ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह

२२-२५ मार्च १९७९

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

१५ हनुमान रोड

स्मारिका

सत्यार्थ का प्रकाश

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

स्मारिका

(सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह)
२२-२५ मार्च १९७९

स्वनाम धन्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के चरणों में सादर समर्पित

प्रकाशक

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (रजि०)
१५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१
दूरभाष : ३१०१५०

राष्ट्रिय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री : धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः । सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

— यजु० २२।२१

ब्रह्मन् ! स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी ॥
होवें दुधारु गौएं, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें ॥
फल-फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

उपराष्ट्रपति, भारत
नई देहली
VICE-PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

प्रिय महोदय,

आपका पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद ।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा सत्यार्थ प्रकाश के सौ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में मार्च, १९७९ के अन्तिम सप्ताह में शताब्दी समारोह का आयोजन करने जा रही है। इस अवसर पर 'सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी स्मारिका" का प्रकाशन भी किया जा रहा है। मैं शताब्दी समारोह तथा स्मारिका की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं भेजता हूं।

आपका,

(ब० दा० जत्ती)

N0 4165/RM/78
प्रधान मन्त्री भारत
PRIME MINISTER OF INDIA

सन्देश

स्वामी दयानन्द सरस्वती का सत्यार्थ प्रकाश एक अमूल्य ग्रन्थ है, जिसमें मानवीय मूल्यों के प्रति उनकी गहरी आस्था की झलक मिलती है। वे अस्पृश्यता के कट्टर विरोधी थे और उन्होंने अछूतों तथा दलितों के उत्थान के लिए जीवन भर काम किया। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की जो समता और न्याय पर आधारित हो और ऊंच-नीच की भावना से मुक्त हो।

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारंभ का आयोजन किया जा रहा है। इस समारंभ की सफलता के लिए मेरी शुभ कामनायें।

(मोरारजी देसाई)

नई दिल्ली,
२ जनवरी, १९७९

उपप्रधान मंत्री व रक्षा मंत्री, भारत
DEPUTY PRIME MINISTER
&
MINISTER OF DEFENCE, INDIA

नई दिल्ली

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजी०) हनुमान रोड नई दिल्ली द्वारा सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह मार्च, १९७९ में मनाया जा रहा है और इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है, यह जानकर प्रसन्नता है।

सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानन्द जी द्वारा रचित समाज सुधार और जाति-पांति विहीन समाज के निर्माण के लिए प्रेरक ग्रन्थ है। आशा है, शताब्दी समारोह के अवसर पर स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तों, उपदेशों और सत्यार्थ प्रकाश का प्रचार अधिकाधिक किया जाएगा और स्मारिका में तत्सम्बन्धी प्रेरक सामग्री प्रकाशित होगी।

समारोह अपने लक्ष्य में सफल हो एवम् स्मारिका उपयोगी सिद्ध हो।

(जगजीवन राम)

सं० ७२/डी/एम एल जे सी ए/७९
मंत्री
विधि, न्याय एवं कम्पनी काय
नई दिल्ली ११०००१ (भारत)
MINISTER OF LAW, JUSTICE
AND COMPANY AFFAIRS
NEW DELHI-110001 (INDIA)
५ जनवरी, १९७९

सन्देश

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि वैदिक धर्म के प्रतिष्ठापक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित ग्रन्थ "सत्यार्थ-प्रकाश" की शताब्दी मनाने का निर्णय दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने किया है। इस समारोह के अनुरूप ही स्मारिका का प्रकाशन भी है। महर्षि दयानन्द के विचारों को पिछले सौ वर्षों में जनता ने ग्रहण किया है और वह उनसे प्रभावित हुई है। आगे भी हम उनके विचारों से किस प्रकार अपनी बुद्धि को आलोकित कर सकते हैं, यह इस स्मारिका में पढ़ने को मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

समारोह की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं।

(शांति भूषण)

५८९/रा० रा० मं०/७८
राज्य मंत्री
रक्षा मन्त्रालय
भारत सरकार
MINISTER OF STATE
MINISTRY OF DEFENCE
GOVERNMENT OF INDIA

New Delhi, 26 सितम्बर, 1978.

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा "सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह" का मार्च के अन्तिम सप्ताह में बड़ी धूमधाम से आयोजन कर रही है।

युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती समस्त विश्व की मंगल कामना को लेकर चले थे जो हमारी संस्कृति की आधारशिला है। "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्" में इसी कामना को व्यक्त किया गया है। सम्पूर्ण मानवता के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा भारतीय संस्कृति की बहुमूल्य निधि रही है जिसे आर्यसमाज अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से विश्व भर में "मुक्तहस्त" से बांट रहा है ताकि कटुता, घृणा और हिंसा इस विश्व से सदा के लिए विदा हो सके।

मैं समारोह की सफलता की कामना करता हूं और आशा करता हूं कि हर आर्य समाज संस्था विश्व कल्याण की भावना से प्रेरित होकर जन-जन के दुख निवारण के लिए हमेशा कार्य करती रहेगी।

शेर सिंह
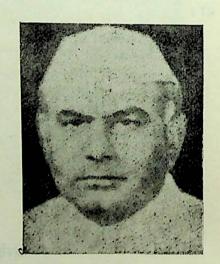
सन्देश

श्री अशोक कुमार विद्यालंकार,

सादर नमस्ते।

आपका पत्र ११-९-७८ का मिला। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप सत्यार्थ प्रकाश स्मारिका का प्रकाशन कर रहे हैं।

वस्तुतः सत्यार्थ प्रकाश प्रचीन और नवीन सभी प्रकार के मानवीय कर्त्तव्यों को बोध कराने वाला महान ग्रंथ है। जो व्यक्ति सत्यार्थ प्रकाश को एकान्त में निष्ठापूर्वक मन लगाकर पढ़ता है उस पर परमात्मा के पवित्र वेद ज्ञान एवं ऋषियों द्वारा रचित अनेक शास्त्रों के रहस्य खुल जाते हैं। सत्यार्थ प्रकाश वेदादि शास्त्रों के गूढ़ सिद्धान्तों को समझने की कुन्जी है।

मान्यवर पंडित गुरुदत्त, एम० ए० जैसे विख्यात विद्वान ने घोषणा पूर्वक कहा था कि मैंने सत्यार्थ प्रकाश को १७ बार पढ़ा है और जब-जब मैं इसे पढ़ता हूं मुझे अनेक नई बातों का और गूढ़ सिद्धान्तों का ज्ञान होता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ५००० वर्ष के पश्चात् अपने वेद प्रतिपादित सिद्धांतों का स्पष्टीकरण सत्यार्थ प्रकाश द्वारा किया है और अनेक भ्रान्त सिद्धान्तों एवं विचारधारा का युक्तिसंगत खंडन करके ऋषि ने मानव जाति का मार्ग प्रशस्त किया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह धार्मिक जगत में एक नई क्रांति का सूत्रपात करेगा। देश की बिगड़ती हुई परिस्थितियों को सम्भालने के लिए सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षा का घर-घर में प्रचार होना चाहिए। यही एक रास्ता है जिससे मानव समाज स्थाई सुख और शांति की प्राप्ति कर सकता है। इस शुभ अवसर पर मेरी शुभकामनायें स्वीकार कीजिए।

भवदीय

(रामगोपाल शालवाले)

प्रधान

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

नई दिल्ली

मुख्य कार्यकारी पार्षद
दिल्ली प्रशासन
१६५७६
दिल्ली, दिनांक १६ सितम्बर, १९७८

प्रिय श्री विद्यालंकार जी,

प्रसन्नता की बात है कि दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा महर्षि दयानन्द की अमरकृति 'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रकाशन के शती समारोह का आयोजन कर रही है। मैं समझता हूं कि यह एक बहुत महत्वपूर्ण काम है क्योंकि 'सत्यार्थ प्रकाश' ऐसी महान कृति है जिसने इस देश के और विदेशों के भी करोड़ों लोगों के जन जीवन को नई दिशा दी है और पूरी एक शताब्दी तक इसने धर्म-संस्कृति, साहित्य राजनीति आदि के क्षेत्रों में काम करने वाले विचारकों को प्रभावित किया है। इस देश के करोड़ों उपेक्षित लोगों के लिए तो यह ग्रंथ आशा और आत्म विश्वास का अजस्र स्रोत बना हुआ है। इस महान ग्रंथ का शताब्दी समारोह आयोजित कर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा न केवल करोड़ों लोगों की भावना का आदर कर रही है अपितु महर्षि दयानन्द के प्रति अपने ऋण को भी अदा कर रही है।

मैं आपके इस आयोजन की सफलता की कामना करता हूं।

आपका
केदार नाथ साहनी

मान्यवर श्री अशोककुमार जी, नमस्ते।

आपका पत्र मिला, यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता, हुई कि दिल्ली आर्य प्र० सभा सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह का आयोजन कर रही है। और इस शुभावसर पर सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी स्मारिका का प्रकाशन भी कर रहो है। इसमें सन्देह नहीं कि सत्यार्थ प्रकाश एक अदभुतऔर अनमोल ग्रन्थ है। इसने हमारे देश के धार्मिक, साँस्कृतिक और राजनैतिक इतिहास को एक नई दिशा दी है। आज भी हमारे देश के सामने जो समस्याय हैं, उनमें से बहुत सी समस्याओं का समाधान सत्यार्थ प्रकाश में मिल जाता है। यह प्रत्येक आर्य समाजी का कर्त्तव्य है कि वह न केवल स्वयं इस ग्रन्थ को पढ़े, परन्तु दूसरों को भी पढ़ाए। इसके द्वारा हम पाखण्ड और अनाचार को दूर करने में सहायक हो सकते हैं। इसलिए प्रत्येक आर्य समाज और आर्य समाजी का यह कर्त्तव्य है कि सत्यार्थ प्रकाश को एक-एक घर में पहुंचाने का प्रयास करें। सत्यार्थ प्रकाश की शताब्दी आर्य समाज के लिए एक विशेष गौरव व महत्व रखती है। इस शुभावसर पर हम सब को सत्यार्थ प्रकाश का अधिक से अधिक प्रचार करने का संकल्प करना चाहिए।

भवदीय
वीरेन्द्र
प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब
जालन्धर

सभा प्रधान का सन्देश

जो स्मारिका सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी के उपलक्ष में दिल्ली ग्रार्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में निकाली जानी है उसके लिए प्रधान सभा के सन्देश देने का कोई प्रश्न नहीं उठता। उसे तो प्रभु का धन्यवाद ही देना होता है कि उसकी सभा ने जिसका वह प्रधान है सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी मनाने और स्मारिका निकालने का निश्चय किया है। परमात्मा इस कार्य को निर्विघ्न मनाये जाने का प्रार्थनीय है। यह तो निश्चय ही पता है कि जब सौ वर्ष के पश्चात सत्यार्थ प्रकाश का दो सौ वर्षीय समारोह मनाया जावेगा तो उस समय हममें से कोई न होगा। इस दृष्टिकोण से मैं और मेरे साथी गर्व समझते हैं कि प्रभु की कृपा से हमें यह ग्रवसर प्रदान हुग्रा है।

इस समय यह सन्देश देते वक्त मुझे प्रभु का बहुत-बहुत ग्राभार प्रकट करना है कि जिसने हमारे एकसाथी, आर्य समाज के एक रत्न श्री वीरेन्द्र जी एम० ए० प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को मृत्यु के ग्रास से बचाया है। ऐसे व्यक्तियों की तो ग्रार्य समाज को हमेशा हमेशा के लिए ग्रावश्यकता है। सूचना से ज्ञात होता है कि श्री वीरेन्द्र जी जो कि लुधियाना ग्रार्य समाज की शोभा यात्रा में हाथी पर दीवान राम सरनदास जी के साथ बैठे थे गिर गये ग्रौर बेहोशी की हालत में उनको हस्पताल पहुंचाया गया। तमाम आर्य जगत में इस समाचार पर ग्रत्यन्त चिन्ता थी और अब प्रसन्नता है और विश्वास है कि वह इस शताब्दी मनाये जाने के ग्रवसर पर जो कि २२ मार्च से २५ मार्च १९७९ तक रामलीला मैदान दिल्ली में मनाई जा रही है जिसमें भव्य शोभा यात्रा भी निकाली जानी है, वह उपस्थित होंगे और अपने विचार और सन्देश देंगे।

कहा जाता है कि अगर रोग का सही परिचय मिल जावे तो होम्योपैथी की दवा अवश्यमेव उस रोग को दूर कर देती है। यही बात सत्यार्थ प्रकाश के विषय में कही जा सकती है। मनुष्य मात्र बल्कि हर प्राणी मात्र के लिए इसमें उसके कल्याण के लिए और हर किस्म के मानसिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और व्यक्तिगत रोगों की भी उसके मुताबिक चिकित्सा हो सकती है। मनुष्य को इस संसार में प्रभु को सही अर्थों में जानकारी प्राप्त करके प्रभु के समीप पहुंचने और अपने जीवन को यज्ञमय जीवन बनाने का हर प्रकार का नुस्खा इसमें मौजूद है। राजा और प्रजा के कर्त्तव्य और प्राणी मात्र के आपस में सम्बन्ध स्नेह और प्रेम की सत्यार्थ प्रकाश एक कुन्जी है। इसकी जानकारी, इसके अध्ययन से हर व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। प्रभु करे कि सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने से जो लाखों व्यक्तियों के जीवन सुधर गये और भारत अपना सिर ऊंचा करके आजादी की हवा ले रहा है, इसका प्रचार और प्रसार होता रहे और इसकी शिक्षायें प्राणी मात्र अपने जीवन का अंग मानकर अपना कल्याण और दूसरों का कल्याण करने में समर्थ हो सके यही मेरी प्रभु से प्रार्थना है और यही सन्देश भी समझा जाना हो तो इस अवसर पर स्मारिका के लिए है। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे साथी जो दिन रात इस कार्य को कर रहे हैं वह इस स्मारिका को ऐसे अच्छे रूप में आर्य जनता और दूसरों को दे सकेंगे ताकि आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी एक शिक्षा का साधन बने और उत्साह बढ़ायें।

—सोमनाथ एडवोकेट
प्रधान
दिल्ली ग्रार्य प्रतिनिधि सभा
१५ हनुमान रोड, नई दिल्ली
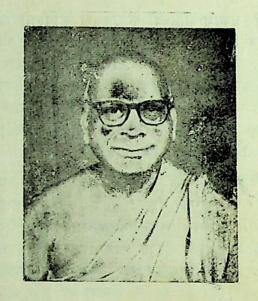
महर्षि दयानन्द का ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश विश्व साहित्य का ऐतिहासिक ग्रन्थ है—भारत में इसने नये इतिहास का निर्माण किया, और विश्व के धार्मिक साहित्य को नये मार्ग का प्रदर्शन किया। यह ग्रन्थ नयी क्रान्ति का अग्रदूत है। कार्ल मार्क्स ने अपने ग्रन्थ दास कैपिटल' द्वारा जो क्रान्ति आर्थिक जगत् में की, उससे अधिक क्रान्ति की क्षमता धर्म और विश्वास के क्षेत्रों में सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में है। हिन्दी साहित्य का यह एक मात्र गद्य ग्रन्थ हैं जिसका अनुवाद इतनी विश्व भाषाओं में हुआ।

महान् दूरदर्शी की सर्वतोन्मुखी दृष्टि का यह अदभुत्त ग्रन्थ हमें शतियों तक आलोक देता रहेगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

निस्पृह औरउदात्त विचारों से ओतप्रोत सत्य के जिज्ञासु और कल्याण की कामना रखने वाले अद्वितीय आचार्य की अनमोल वाणी हमें इस ग्रन्थ रत्न में प्राप्त है, यह हमारा गौरव है।

-सत्यप्रकाश सरस्वती

प्रयाग : १०/२/७६

अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रणेता महर्षिदयानन्द सरस्वती

दिन रात जगाय रहे हमको दु:खनाशक रुप जो पिता थे हमारे ।
अफसोस यही अब है हमको, जब नींद खुली तब आप सिधारे ।।
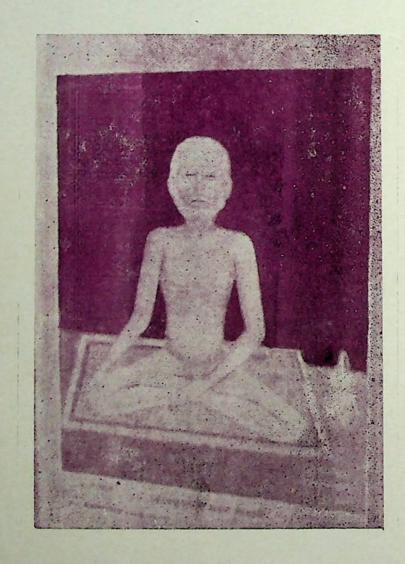
महर्षि दयानन्द सरस्वती के गुरु, व्याकरण के सूर्य
प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द जी दन्डी

आर्य समाज के आधार स्तम्भ

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

अमर शहीद पं० लेखराम

स्वामी श्रद्धानंद महाराज

श्री महात्मा हंसराज
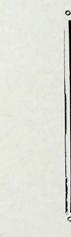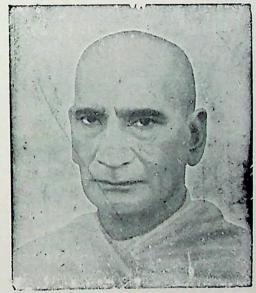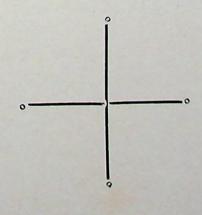
महात्मा नारायण स्वामी जी

आर्य जगत् के स्वर्गीय संन्यासी, विद्वान् एवं नेतागण

स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी

महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी धर्मानन्द विद्यामार्तण्ड

स्वामी ध्रुवानन्द

स्वमी अभेदानन्द जी

स्वामी ब्रह्मानन्द दण्डी

स्वामी सोमानन्द (पं० नरेन्द्र जी)

महाशय कृष्ण जी

महात्मा आनन्द भिक्षु

श्री प्रकाशवीर शास्त्री

ला० दीवानचंद आवल

श्री गंगा प्रसाद चीफ जज

श्री मिलखा सिंह

लाला लाजपत राय

ला० काहन चन्द

आचार्य रामदेव जी

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

राय साहब गोपी चन्द सहगल

श्री घनश्याम सिंह गुप्त

श्री महताब सिंह साहनी एडवोकेट

श्री बाल मुकंद आहूजा

आर्य जगत के वर्तमान नेता, विद्वान् एवं कार्यकर्त्ता

श्री ओम्प्रकाश त्यागी' एम० पी०
(मंत्री, सा० आ० प्र० सभा)

श्री रामगोपाल शालवाले
(प्रधान सा० आ० प्र० सभा)

श्री सोमनाथ एडवोकेट
(प्रधान, दि० आ० प्र० सभा)

श्री जी० एल० दत्ता

श्री वीरेन्द्र (जालन्धर)
प्रधान, आ० प्र० स० (पंजाब)

डा० सूरजभा न
(प्रधान, प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा)

स्वामी ओमानंद सरस्वती
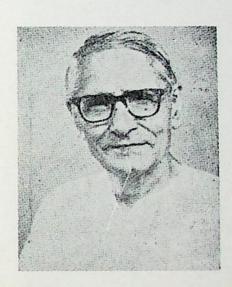
श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
भू० पू० कुलपति गु० कांगड़ी
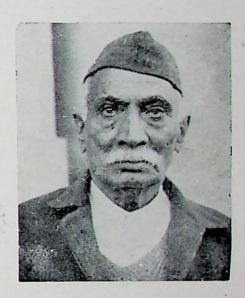
बाबू पूर्णचन्द एडवोकेट
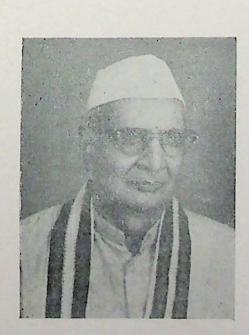
पं० मदन मोहन विद्यासागर
(हैदराबाद)

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री
(बड़ौदा)

पं० शिव कुमार शास्त्री

श्री देसराज जी चौधरी
(प्रधान आ० क० सभा दिल्ली)

हंसराज गुप्त
भू० पू० महापौर (दिल्ली)

श्री रघुवीरसिंह शास्त्री

पं० सच्चिदानन्द शास्त्री
(उप मन्त्री, सा० आ० प्र० सभा)

श्री सरदारी लाल वर्मा
(मंत्री, दि० आ० प्र० सभा)

श्री पृथ्वी सिंह आजाद

श्री लक्ष्मी मल्ल सिंघवी

पं० राजगुरु शर्मा
(प्रधान आ० प्र० स०, म० प्र०)

श्री प्रताप सिंह शूरजी वल्लभदास
(बम्बई)

(श्री रामनाथ सहगल
मंत्री प्रा० आ० प्र० सभा

श्री सुभाष विद्यालंकार
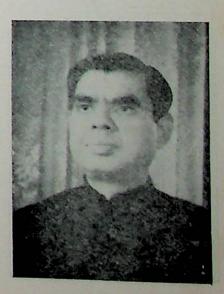
डॉ० प्रशान्त कुमार वेदालंकार
(सदस्य, महानगर परिषद्)

श्री रामचन्द्र विकल
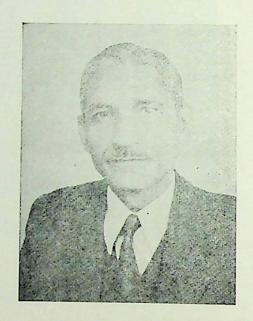
म० धर्मपाल
(उप-प्रधान; दि० आ० प्र० सभा)
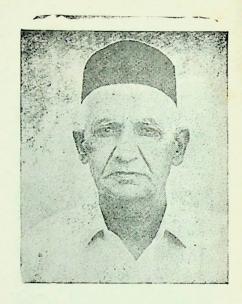
ला० रामलाल मलिक

श्री ज्योति प्रसाद

श्री रतनचन्द सूद

श्री अजय कुमार
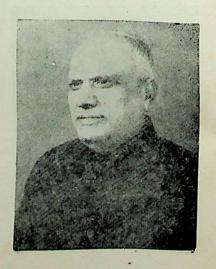
श्री मुलखराज भल्ला

महाशय चुन्नी लाल

श्री देशराज बहल

चौ० हीरासिंह
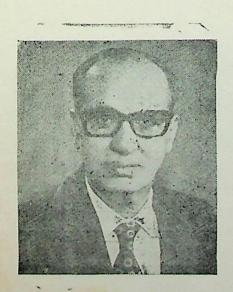
श्री नवनीत लाल एडवोकेट

श्री विमल चन्द "विमलेश"
सदस्य सा० आ० प्र० सभा

श्री प्रेमनाथ चड्ढा
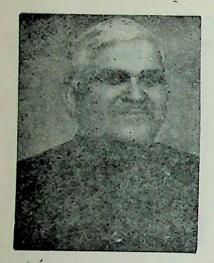
श्री राम मूर्ति कैला
(संयोजक स्मारिका)

श्री हर कृष्णलाल सहदेव
(मंत्री, आ० स० हनुमान रोड)

श्री आर० एल० सहदेव
(सह-संयोजक स्मारिका)

डॉ० सूर्य प्रकाश स्नातक
(सह-सम्पादक, स्मारिका)
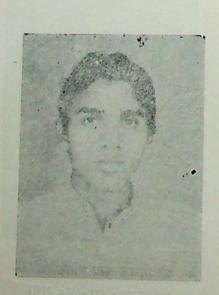
श्री अशोक विद्यालंकार
(सम्पादक, स्मारिका)

श्री ओम प्रकाश "वर्मा"
(सह-सम्पादक स्मारिका)
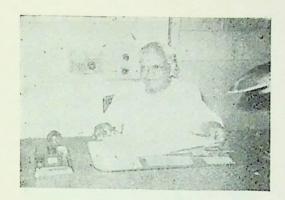
प्रि० ओम प्रकाश

श्री विद्या प्रकाश सेठी

म० बनवारी लाल जी

श्री पुष्कर लाल आर्य
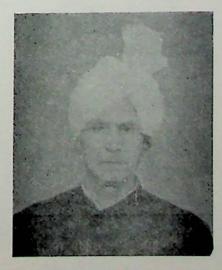
श्री गोकुल चन्द आहूजा

श्री तीर्थ राम आहूजा

श्री क्षितीश वेदालङ्कार
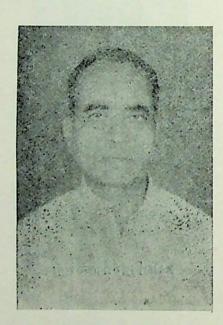
पं० चन्द्रभानु सि० भू०

पं० रामकिशोर वैद्य; वेद प्रचार अधिष्ठाता
दिल्ली आ० प्र० सभा

कविराज सत्यदेव स्नातक
भजनोपदेशक (दि० आ० प्र० स०)

पं० सत्यपाल 'मधुर'
भजनोपदेशक (दि० आ० प्र० सभा)

पं० प्रकाशवीर 'व्याकुल'
भजनोपदेक, (दि० आ० प्र० सभा)

श्रीमती शान्ति देवी मलिक
(प्रधान, प्रा० आ० म० सभा)

श्री प्रह्लादराय गुप्ता

श्रीमती प्रेमशीला
(मंत्रिणी प्रांतीय आर्य महिला सभा)

श्री मनोहर लाल गुप्त

श्री प्राणनाथ

श्री मदन गोपाल खोसला

श्री वेदव्रत शर्मा

श्री अशोक कुमार सहगल

श्री गुलाब सिंह राघव

श्री राजेन्द्र दुर्गा
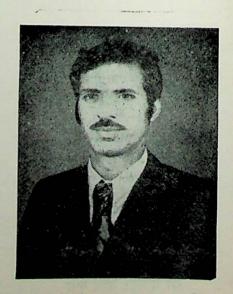
श्री विद्या सागर

श्री राज कुमार शर्मा
(केशियर दि० आ० प्र० सभा)

श्री जगदीश लाल
(लिपिक, दि० आ० प्र० सभा)
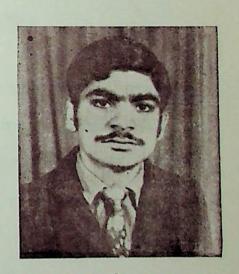
श्री राम किंकर
(पत्रवाहक, दि० आ० प्र० सभा)

प्रतिरक्षा मंत्री बाबू जगजीवन राम का स्वागत करते हुये
श्री देश राज बहल

श्रद्धांजली

आर्य समाज के ज्ञात-अज्ञात हुतात्माओं, वीर सेनानियों, उपदेशकों, संन्यासियो, प्रचारकों, आर्य नेताओं और आर्य सदस्यों के प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं, जिन्होंने वैदिक धर्म रूपी उद्यान को अपने रक्त और पसीने से सींच कर इसे उपवन में बदल दिया, जिसकी शीतल छाया और मधुर सुगन्धि आज भी संसार के करोड़ों व्यक्तियों के लिए लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का कारण बनी।

—सरदारी लाल वर्मा
सभा मंत्री

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

१५ हनुमान रोड नई दिल्ली—११०००१

१९७८-७९ की अन्तरंग सदस्यों की सूची

पद, नाम व पता

प्रधान

श्री सोमनाथ जी एड्वोकेट ८, गांधी स्केयर मलका गंज दिल्ली -७

उपप्रधान

महाशय धर्मपाल ६।४४ कीर्ति नगर, इन्डस्ट्रीयल एरिया नई दिल्ली—१५

श्री रतन चद सूद १६, गोल्फ लिंक रोड़, नई दिल्ली—११०००३

श्री विद्या प्रकाश सेठी सेडी बिल्डिंग, कृष्णा चौक, कृष्ण नगर दिल्ली—५१

मन्त्री

श्री सरदारी लाल वर्मा ई- १६२ देव नगर नई दिल्ली-५

उपमन्त्री

श्री प्राण नाथ जी ५।५९८ लोधी रोड नई दिल्ली- ७

श्री दीना नाथ गुप्त एच ४०२ डी० डी० ए० कालोनी नारायणा नई दिल्ली

कोषाध्यक्ष

श्री बलवन्त राय खन्ना ए-६७ साऊथ एक्सटेशन भाग २ नई दिल्ली-४९

पुस्तकालयाध्यक्ष

श्री लाजपतराय जी १०७२१ प्रताप नगर अन्धा मुगल दिल्ली-७

अन्तरंग सदस्य

श्री राममूर्ति कैला एच- ४७० अशोक विहार दिल्ली-५२

श्री रामगोपाल शालवले मोती बाज़ार, चांदनी चौक दिल्ली-६

श्री चौधरी देश राज २४, दरिया गंज नई दिल्ली-२

श्री तीर्थराम आहूजा ३०, पार्क एरिया करोल बाग नई दिल्ली- ५

पद, नाम व पता

श्री चौधरी हीरासिंह ग्राम मुखमेल पुर दिल्ली- ३९

श्री मदन गोपाल खोसला पी-२१ ग्रीन पार्क एक्सटेशन नई दिल्ली- १६

श्री नवनीत लाल एड्वोकेट १९।१ निजामुद्दीन इस्ट दिल्ली

श्री चन्द्र प्रकाश आर्य ३।१० रेलवे कालोनी लोधी रोड नई दिल्ली-३

श्री पुरुषोत्तम लाल ११ जी- २४ लाजपत नगर नई दिल्ली-२४

श्री गणेशी लाल ४४२३ आर्य पुरा सब्जी मण्डी दिल्ली-७

श्री श्रद्धानंद जी ३२, लक्ष्मी बिहार कालोनी गाजिया-बाद

श्री राजभरत जी १००४४।२ मुलतानी ढ़ाढ़ा पहाड़ गंज नई दिल्ली

श्री प्रेम नाथ एड्वोकेट १२, गांधी स्केयर मलका गंख दिल्ली- ७

श्री रतन लाल सहदेव ए- २०३ डिफेंस कालोनी नई दिल्ली-२४

श्री वैद्य कर्मबीर जी मन्त्री आर्य कन्या गुरुकुल नरेला दिल्ली- ४९

श्री मनोहर लाल गुप्त जे- १० सरोजनी नगर नई दिल्ली-२३

श्री सूर्यदेव जी १८६२- चीरा खाना माली वाड़ा दिल्ली- ६

श्री ओमप्रकाश पुरुषार्थी फिरोजशाह रोड़ नई दिल्ली

श्री ओम प्रकाश सुनेजा ३८।३०। ८ दशमेश पुरा करलो बाग नई दिल्ली-

श्री ओम प्रकाश आर्य २।६ सुभाष नगर नई दिल्ला–२७

श्री करतार सिंह जी आर्य समाज शाहबाद मुहम्मद पुर नई दिल्ली- ४५

श्री राधा कृष्ण-सी ६।११ राणा प्रताप बाग दिल्ली ७

श्री जे० आर० कोच्छड़ डब्लयू-३४ राजोरी गार्डन नई दिल्ली-२७

श्री श्रीराम जी ५५०६ शोरा कोठी पहाड़गंज नई दिल्ली-५

श्री प्रि० चन्द्र देव जी १६बी। २० डब्लयू०ई०ए० देव नगर नई दिल्ली ५

श्री विमलचन्द्र विमलेश सी-३ ई, वसन्त लेन नई दिल्ली १

श्री प्रकाश चन्द्र जी शास्त्री दुकान न०९४ सरोजनी नगर मार्किट नई दिल्ली-२३

श्री तेजभान काठपालिया १०६५ कूचा नटवा, चांदनी चौक दिल्ली-६

श्री प्रद्युम्मन लाल तलवाड़ ९३ स्वदेशी मार्किट सदर बाजार दिल्ली-६

श्री ज्योती प्रसाद गुप्त एफ ६३ मेन ग्रीन पार्क दिल्ली-१६

श्री विशम्भर नाथ भाटिया एच-१४ कृष्ण नगर दिल्ली ५१

श्री विद्यासागर जी एफ १७२-१७३ समस पुर रोड़ पाण्डव नगर दिल्ली

श्री सत्यपाल भसीन २३३३-३६ बीड़न पुरा करोल बाग नई दिल्ली ५

श्रीमती सरला पाल सी २९१ डिफैंस कालोनी नई दिल्ली २४

श्री हरकृष्ण लाल सहदेव १४ ई बेयर्ड लेन नई दिल्ली १

श्री सत्यदेव विद्यालंकार ५८ श्रद्धानंद मार्ग दिल्ली ६

श्रीमती सुशीला कोच्छड़ डब्लयू । ३४ राजोरी गार्डन नई दिल्ली

श्रीमती सुशीला जी आर्या ई १३।३ कृष्ण नगर दिल्ली ५१

श्री हरिदेव आर्य ई १३।३ कृष्ण नगर दिल्ली ५१

श्री गुरदीन प्रसाद २९ अर्जुन नगर पो० कृष्ण नगर दिल्ली ५१

श्री सत्यपाल भाटिया भाटिया प्रेस ७।१०६ गुरनानक गली गांधी नगर दिल्ली ३१

श्री अजय कुमार १५९५ हरध्यान सिंह रोड़ करोल बाग नई दिल्ली ५

श्री सुभाष विद्यालंकार डी ६ गुलमोहर पार्क नई दिल्ली

श्री प्राण नाथ घई डी ५ कैलाश कालोनी नई दिल्ली ४८

श्री राम लाल मलिक ६२।७८ रामजस रोड़ करोल बाग नई दिल्ली ५

श्री जिया राम आनन्द बी-बी १६ ग्रेटरकैलाश इन्कलेव-१ नई दिल्ली

श्री रामचन्द्र आर्य डी ४७५ रघुवीर नगर जे० जे० कालोनी नई दिल्ली

श्री राजेन्द्र दुर्गा ९० ए गुप्ता कालोनी किंगजवे कैम्प दिल्ली ९

श्री गुरमुखदास बी २९ कीर्ति नगर नई दिल्ली १५

श्री प्रि० होशियारसिंह आर्यसमाज वाजीतपुर दिल्ली ३९

श्री कृष्णलाल सूरी डी ३४३ डिफेंस कालोनी नई दिल्ली २४

श्री गुरुदत्तजी आई ई ५८५९ लाजपत नगर नई दिल्ली२४

श्री मांगे रामआर्य आर्य समाज बांकनेर दिल्ली ३९

श्री सोहन लाल जी ५।५३३ महरोली दिल्ली ३०

श्री विद्या सागर विद्यालंकार ए ८।४२ राणा प्रताप बाग दिल्ली ७

श्री सत्यदेव गुप्त ए ७२३ सरोजनी नगर नई दिल्ली

श्री देशराज बहल ६ बी।८ नारदन एक्सटेंशन एरिया राजेन्द्र नगर नई दिल्ली ६०

रामलाल चौधरी १०७ आनन्दलोक दिल्ली ४९

विषय-सूची

आभार

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी-समारोह के अवसर पर "सत्यार्थ प्रकाश-स्मारिका' के प्रकाशन में जो आपका सहयोग प्राप्त हुआ, तदर्थ हम आपके हृदय से आभारी हैं।

समारोह की सफलता की शुभकामना से प्रेरित देश के शीर्षस्थ जिन गणमान्य नेताओं ने अपने शुभ सन्देश भेजकर हमारा मार्गदर्शन किया है, हम उनके हृदय से अनुगृहीत हैं।

देश के विख्यात प्रबुद्ध लेखकों, मनीषी विद्वानों, सुयोग्य चिन्तकों एवं क्रान्ति-दर्शी कवियों ने अपने विचारोत्तेजक लेखों एवं रचनाओं के माध्यम से जन-जन तक ऋषिवर दयानन्द एवं 'सत्यार्थप्रकाश' का पावन सन्देश पहुंचाया है, इसके लिये हम उनके प्रति सादर कतज्ञता व्यक्त करते हैं। इसके साथ ही हम आभारी हैं उन उदारमना उद्योगपतियों एवं व्यापारियों के, जिन्होंने विज्ञापन देकर हमें प्रोत्साहित किया है।

अपने निकट सहयोगी श्री सरदारी लाल वर्मा, श्री अशोक विद्यालङ्कार, डा० सूर्य प्रकाश स्नातक एवं श्री ओमप्रकाश वर्मा ने इस आयोजन की सफलता के लिये जिस धैर्य, लगन एवं परिश्रम से कार्य किया है वह न केवल प्रशंसनीय प्रत्युत श्लाघनीय भी है।

अन्ततः हम 'सत्यार्थ प्रकाश' शताब्दी समारोह में पधारने वाले समस्त आर्य भाई बहनों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

विनीत :

राममूर्ति कैला	**रतनलाल सहदेव**
संयोजक, स्मारिका समिति	सह-संयोजक, स्मारिका समिति
प्रधान, आर्य समाज हनुमान रोड	उप प्रधान आर्य समाज हनुमान रोड
रीजनल डाइरेक्टर' वेकफील्ड कम्पनी, नई दिल्ली	अवैतनिक प्रबन्धक, रघुमल आर्य कन्या महाविद्यालय, नई दिल्ली

सत्यार्थ प्रकाश-शताब्दी
स्मारिका

(२२-२५ मार्च १९७९)

सम्पादक :
अशोक विद्यालङ्कार

सह-सम्पादक :
डॉ० सूर्य प्रकाश स्नातक
ओ३म् प्रकाश वर्मा
(अवैतनिक)

मूल्य : पांच रुपये

प्रकाशक—
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
१५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१

मुद्रक—
आर्यधन प्रिन्टर्स
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

सम्पादकीय

समग्र क्रान्ति का अग्रदूत : सत्यार्थ प्रकाश

आज देश में यत्र-तत्र 'समग्र क्रान्ति' का नारा सुनाई देता है। कहीं-कहीं उस तथाकथित क्रान्ति का क्रियात्मक रूप यज्ञोपवीत तोड़ने, बसें जलाने, चलती गाड़ियां रोकने, पथराव करने अथवा परस्पर जन-संघर्ष के रूप में दृष्टिगोचर होता है, परन्तु वस्तुतः देखा जाय तो यह क्रान्ति का विकृत एवं भ्रष्ट स्वरूप है। क्रान्ति का अभिप्राय नारे लगाना, धरने देना, अनशन करना, बसें जलाना अथवा किसी शासक को पदच्युत करना नहीं है। क्रान्ति का अर्थ होता है संक्रमण--परिवर्तन एक स्थिति से दूसरी स्थिति में संक्रमण। पतितावस्था से उन्नति की ओर बढ़ना, दुरित से भद्र की ओर बढ़ना, असत्य से सत्य एवं अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ना, ये सभी क्रांति के ही सन्दर्भ होंगे। इस प्रकार 'समग्र- क्रान्ति' का अभिप्राय है—मनुष्य का जीवन के सर्वाङ्गीण क्षेत्र में सत्य, भद्र, प्रकाश एवं विकास की ओर अग्रसरित होना।

आज से एक शती पूर्व युगद्रष्टा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने दिव्य ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के रूप में वास्तविक समग्र क्राँति का शंखनाद किया था। इस ग्रंथ के एक-एक शब्द में क्रान्ति का तीव्र स्वर सुनाई देता है। ऋषिवर दयानंद मनुष्य-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन चाहते थे। अतएव उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में मानव जीवन के विविध पक्षों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। जीवन के किसी भी क्षेत्र का कोई ऐसा कोना नहीं छोड़ा, जिस पर ऋषि ने लेखनी न उठाई हो। इस महान् ग्रंथ में मूलतः वेदों तथा ऋषि-प्रणीत आर्ष ग्रंथों के आधार पर मनुष्य के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी पक्षों और सन्दर्भों पर प्रकाश डालते हुए उसका पदे-पदे पथ-प्रदर्शन किया गया है। मनुष्य के समक्ष चाहे उसकी वैयक्तिक, पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक आदि किसी भी प्रकार की उलझन या समस्या है, उस समय उसे सत्यार्थप्रकाश पढ़ना चाहिए। वहां उसे अपनी समस्या का समुचित एवं सन्तोषजनक समाधान मिलेगा। सही दिशा मिलेगी। और वस्तुतः हजारों, लाखों एवं करोड़ों मनुष्यों को इस ग्रंथ से प्रेरणा मिली है तथा भविष्यत् में मिलती भी रहेगी।

मूर्ति-पूजा, ईश्वरावतार, आदि प्रचलित तत्कालीन अवैदिक मान्यताओं, भूत-प्रेत, गण्डा तावीज, फलित ज्योतिष आदि अंध-विश्वासों, छूआछूत, दहेज-प्रथा, स्त्री-अशिक्षा, बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध इस ग्रंथ में तीव्र स्वर बुलन्द किया गया है। साथ ही प्राचीन शिक्षा पद्धति (गुरुकुल शिक्षा पद्धति) का उद्घोष

किया, जिसकी इस देश को आज महती आवश्यकता है। इस प्रकार इस ग्रंथ ने धार्मिक एवं सामाजिक ही नहीं अपितु राजनीतिक (राष्ट्रियता के) क्षेत्र में भी शतशः युवा हृदयों में "**माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः**" की पुनीत भावना का संचार किया और इसी भावना से प्रेरित होकर, अपनी मातृभूमि को विदेशी पराधीनता की जंजीरों से मुक्त कराने के लिए शत्रुओं से संघर्ष करते हुए वे शहीद हो गये। स्वतंत्रता-संग्राम रूपी यज्ञ में अपनी आत्मा की आहुति देने वाले उन अमर हुतात्माओं के प्रति आज भी हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है।

इन्हीं सब विशेषताओं के कारण 'सत्यार्थ प्रकाश' आधुनिक युगीन भारतीय ही नहीं अपितु विश्व साहित्याकाश में भगवान् भास्कर की तरह प्रकाशित हो रहा है। वस्तुतः ऐसा अनूठा क्रांतिकारी ग्रन्थ आधुनिक युग के किसी भी चिन्तक, विद्वान् एवं महापुरुष ने संसार को नहीं दिया जो मनुष्य मात्र को प्रत्येक क्षेत्र में सही एवं नई दिशा दे सके।

यद्यपि यह महान् ग्रंथ एक शती पूर्व लिखा गया, परन्तु इसमें जिन मानव मूल्यों की प्रस्थापना की गई है, वे शाश्वत एवं सनातन हैं। अतः जितनी उपादेयता इस ग्रंथ की पहले रही है, इस भौतिकवादी युग में कहीं उससे अधिक इसके प्रचार एवं प्रसार की आवश्यकता है, जिससे आज के भूले-भटके मानव को सही पथ-प्रदर्शन एवं सही दिशा मिल सके।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित यह शताब्दी समारोह जहां समग्र-क्रांति के अग्रदूत—सत्यार्थ प्रकाश की दिग्विजय का प्रतीक है वहां मानव मात्र को सत्यार्थ के प्रति उत्साहित व प्रेरित भी करेगा।

— अशोक विद्यालङ्कार

स्वामी दयानन्द जी के विचार (भूमिका में)

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहता है ।......जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो......क्योंकि सत्य उपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है

यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश कराता हूं वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ वर्त्तता हूं। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूं, वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है। क्यों कि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।

जैसे पशु बलवान होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं। जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।·········

बहुत से हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्यों कि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूं, वैसा सबको करना योग्य है।

इन मतों के थोड़े-थोड़े ही दोष प्रकाशित किये हैं, जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करने कराने में समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहकाकर विरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है। यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे, इसलिये, मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूं। इसको देख दिखला के मेरे श्रम को सफल करें और इसी प्रकार पक्ष-पात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य काम है।

सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

'सत्यार्थ प्रकाश' इनकी दृष्टि में

मुनिवर पण्डित गुरुदत्त एम० ए०–"मैंने सत्यार्थ प्रकाश को न्यून से न्यून १४ बार पढ़ा है। जितनी बार इसको पढ़ता हूं मुझे तन मन तथा आत्मा के लिए कुछ नया आनन्द प्राप्त होता है। पुस्तक गूढ़ तत्वों और सच्चाइयों से भरी हुई है।"........."यदि सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति का मूल्य एक हजार रुपये होता तो भी उसे सारी सम्पत्ति बेचकर खरीदता, यह अद्वितीय पुस्तक हर मूल्य में सस्ती है।

पादरी सी० एफ० एण्ड्र्यूज़–"मैंने भारत में आकर सच्चे हिन्दू धर्म का परिचय सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय से पाया है, क्योंकि मार्ग से भटकने वालों के लिए यह पथ-प्रदर्शक हैं।"

लाला लाजपतराय जी–"मैंने सार्वजनिक सेवा के सारे पाठ आर्य समाज से सीखे हैं। ऋषि दयानन्द मेरे गुरू हैं, मैंने संसार में उन्हीं को गुरू माना है। वह मेरे धर्म पिता हैं और आर्य समाज मेरी माता है। गुरुदेव रचित सत्यार्थ प्रकाश मेरे जीवन में प्रकाश देने वाले सूर्य के समान हैं।

वीर सावरकर–"हिन्दू जाति की ठण्डी रगों में गरम खून का संचार करने वाला यह ग्रन्थ अमर रहे, यही मेरी कामना है। सत्यार्थ प्रकाश की विद्यमानता में कोई धर्मावलम्बी अपने मत की शेखी नहीं मार सकता। सब हिन्दू सत्यार्थ प्रकाश का पवित्र धार्मिक ग्रन्थ के रूप में मान करते हैं।"

श्री राघवाचार्य (भू० पू० प्रधान कांग्रेस तथा हिन्दू महासभा)—"स्वामी दयानन्द हमारे महर्षियों में से एक थे और उनका लिखा हुआ सत्यार्थ प्रकाश हमारे धर्म का एक महत्वपूर्ण शास्त्र है।"

डा० श्यामप्रसाद मुकर्जी–"यदि कोई आक्रमण सत्यार्थ प्रकाश पर किया गया तो समस्त हिन्दुओं और सारे देश द्वारा उसका घोर प्रतिरोध किया जाएगा। यदि इस प्रकार स्वतन्त्रता के अपहरण करने के सिद्धान्त को मान लिया गया तो इसका दुष्परिणाम दूसरों की अपेक्षा उनको कहीं अधिक भोगना पड़ेगा जो शीशे के मकान में बैठकर दूसरों पर पत्थर फेंकने की मूर्खता कर रहे हैं।"

श्री सी० एस० रंगा आयर, एम० ए०–"जेल की दीवारों के पीछे एक वर्ष तक सत्यार्थ प्रकाश मेरा मित्र, प्रकाश दाता और जीवन बना रहा। सत्यार्थ प्रकाश में वेदों का तत्व हैं। इसके महत्व को कम करने का अर्थ है कि वेदों के तत्व और सार की प्रतिष्ठा और मूल्य को कम किया जाय।"

सर टी० वी० शेषगिरि आयर (सनातन धर्मी विद्वान्)—"सनातन धर्म का रहस्य समझने के लिए वेद और केवल वेद ही हमारा मार्ग प्रदर्शन कर सकते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में वेदों का तत्व है। मैं खण्डन किए बिना कह सकता हूं कि सत्यार्थ प्रकाश हमारी सभ्यता की कुंजी है।

साधु टी० एल० वासवानी–"मैंने सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ा है। मुझे इसमें अपनी आत्मा के दर्शन होते हैं। मैं अनुभव करता हूं कि ऋषि दयानन्द के जीवन के साथ मेरा कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

राजकुमार रणंजय सिंह (युवराज अमेठी राज्य)–"ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश इस युग का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसकी जब्ती की बाबत सोचने वालों को हम बता देना चाहते हैं कि इसका एक भी शब्द कभी जब्त नहीं हो सकता।"

सेठ जुगल किशोर बिड़ला–"सत्यार्थ प्रकाश का ग्रन्थ सच्चे सनातन धर्म का सन्देश देने के साथ-साथ अन्धश्रद्धा और पाखण्ड को दूर करता है। इसके पढ़ने से तर्क शक्ति का विकास होता है। मनुष्य मात्र के

कल्याण की भावना से यह ग्रन्थ लिखा गया है। किसी के प्रति उनके भीतर द्वेष नहीं है। ईसाई और मुसलमान भी यदि १३ वें तथा १४ वें समुल्लासों को द्वेष रहित होकर पढ़ें तो वे भी धर्म के तत्व को समझने में समर्थ होंगे। सत्यार्थ प्रकाश की रक्षा में समस्त हिन्दू आर्य समाजियों का साथ देंगे, इसका मुझे विश्वास है।"

मो० मुहम्मद हूसैन एम० ए०—सत्यार्थ प्रकाश क्या है—मोतियों की डिबिया और दूध की नहर है।"

यह धन वह है कि जिस पर दुर्रे-बेबहा हो निसार
जिस से जारी आज तक दुनिया में है जो शीर है।

ला० हरदयाल एम० ए०–"सोई हुई जाति के स्वाभिमान को जागृत करने वाला यह ग्रन्थ अद्वितीय है।"

एन० सी० चटर्जी–"सत्यार्थ प्रकाश केवल आर्य समाजियों की ही पवित्र पुस्तक नहीं है, वरन जिनका विश्वास वैदिक संस्कृति में है उन करोड़ों लोगों के लिए है।

बाबा मिलखा सिंह–"यदि सत्यार्थ प्रकाश पर कोई संकट आया तो उसकी पंक्तियां मेरे खून से लिखी जाएंगी।"

कांग्रेस के संस्थापक ए० ओ० ह्यूम–"स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने योग्य है, जो कि अन्धकार को दूर भगाता है।"

सर सैयद अहमद खां–"ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की आराधना की शिक्षा दी है।"

—०—

मानव के समग्र विकास की कुञ्जी

—वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, भूतपूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ऋषि दयानन्द एक ऐसे अलौकिक महापुरुष थे जो रोज-रोज नहीं आया करते, जो सौ-पचास साल में भी नहीं आया करते, जो हजार-पांच सौ साल में भी नहीं आया करते। वे ऐसे निराले महापुरुष थे जो कभी-कभी हजारों और लाखों सालों के बाद इस धरा-धाम पर आविर्भूत हुआ करते हैं। वे अद्‌भुत प्रतिभा के धनी थे, अखण्ड ब्रह्मचर्य के मूर्तरुप थे। तपस्या के जीवित अवतार थे। ऊंची कोटि के योगी थे, योग-साधना के द्वारा उन्हें सब विषयों के तल तक पहुंचने वाली अन्तर्भेदिनी ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो चुकी थी, वे अठारह-अठारह घन्टे की समाधि में बैठ कर ब्रह्म का साक्षात्कार किया करते थे और ब्रह्मानन्द रस का पान किया करते थे तथा ब्रह्म साक्षात्कार की उस अवस्था में ऊंची आध्यात्मिक प्रेरणायें प्रभु से प्राप्त किया करते थे, चरित्र के अति उच्च आदर्श यम और नियमों का परिपलान उनके जीवन में पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ था, वैदिक और लौकिक समग्र संस्कृत वाङ्मय का गम्भीर अध्ययन और आलोडन करके इस क्षेत्र में उन्होंने अपूर्व पाण्डित्य अर्जित कर रखा था, उनकी तार्किक बुद्धि कैंची से भी अधिक पैनी थी, अज्ञान, अविद्या, और असत्य से उन्हें घोर द्वेष था, क्षमा के वे अवतार थे और दयालुता तथा परोपकार भावना के देहधारीरुप थे। इस प्रकार का महापुरुष मानव जाति के भाग्य से कभी हजारों और लाखों वर्षों के पश्चात् ही उत्पन्न होता है।

जब ऋषि दयानन्द कार्यक्षेत्र में आये तो उन्होंने देखा कि चारों ओर घोर अविद्या और अज्ञान का साम्राज्य छाया हुआ है। घोर अज्ञान में ग्रस्त रहने के कारण मानव भाँति-भाँति के भ्रमजाल, अन्धविश्वास और पाखण्डों की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। घोर अज्ञान के कारण सत्य और धर्म मानव के हाथ से छूट चुका है और वह मिथ्या वादों और कल्पित मत-मतान्तरों के दुर्गम जंगल में फंस गया है। इसके कारण मानव का आचरण और व्यवहार बुरी तरह बिगड़ चुका है। जो धर्म नहीं है उसे उसने धर्म समझ रखा है और जो धर्म है उसे वह भूल चुका है। जो उसे वास्तव में करना चाहिये उसे वह करता नहीं है और जो उसे करना नहीं चाहिये उसे वह चौबीसों घण्टे करता रहता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि मनुष्य भांति-भांति के दुःख और कष्ट भोग रहा है। उसे सही प्रकार की सांसारिक सुख-समृद्धि भी नहीं प्राप्त हो रही है और भावी जीवन के कल्याण का आध्यात्मिक मार्ग भी उसके लिये अवरुद्ध हो गया है।

मानव की इस अज्ञान-ग्रस्त और तज्जन्य दुःखाकुल दयनीय अवस्था को देख कर दया के अवतार ऋषि दयानन्द का हृदय विचलित हो उठा। वह लोगों के अज्ञान और उससे जनित दुःखों के ताप से मोम की भांति द्रवित हो पड़ा। लोगों की इस दयनीय अवस्था से द्रवित होकर करुणा के सागर ऋषि दयानन्द ने समाधि के परम सुख की भी उपेक्षा कर दी और वे मानव-मात्र के अज्ञान और दुःखों का निराकरण करने के कार्य में जी जान से जूझ पड़े और अपना सम्पूर्ण जीवन उन्होंने इसी विराट् कार्य को पूरा करने के लिए समर्पित कर दिया। इस कार्य में ऋषि ने किसी कष्ट को कष्ट और किसी विपत्ति को विपत्ति नहीं गिना। इसके लिए उन्होंने बड़े से बड़े संकट भी झेले। उन पर पत्थर भी फैंके गये, गन्दगी और कीचड़ की टोकरियां भी फैंकी गयीं, जहरीले सांप भी फैंके गये और उन पर तलवारें भी चलाई गयीं। उन्हें मारने के लिये अनेक बार उन्हें जहर भी दिया गया और अन्त में विष-पान से ही उनकी मृत्यु भी हुई। परन्तु लोगों के अज्ञान को दूर करने, उनके आगे सत्य का प्रकाश करने और उन्हें धर्म का सही मार्ग दिखाने और ऐसा करके उनके जीवन को दुख रहित और सुख-समृद्धि-सम्पन्न करने के अपने महान् कर्तव्य से दयालु दयानन्द एक क्षण के लिये भी विचलित नहीं हुए।

ऋषि दयानन्द भारतवर्ष में उत्पन्न हुए थे इसलिये उनका कार्यक्षेत्र भारत रहा। परन्तु उनकी दृष्टि सारी मानव जाति पर थी। उन्होंने जो कुछ भी कहा और किया वह सारी जाति के लिये था। उनका संदेश केवल भारत के ही लोगों के लियेनहीं था। वह सारी दुनिया के लोगों के लिये था।

ऋषि दयानन्द जिन विचारों का प्रचार करते थे और लोगों को जो संदेश देना चाहते थे उसे उन्होंने अपने महान् ग्रन्थ

---

१. पांच नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर, प्रणिधान। पांच यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

सत्यार्थ प्रकाश में संगृहीत कर दिया है। सत्यार्थ प्रकाश साधारण ग्रन्थ नहीं है। जैसे ऋषि दयानन्द एक लोकोत्तर महापुरुष थे वैसे उनका सत्यार्थ प्रकाश भी एक महान् और लोकोत्तर ग्रन्थ है। विश्व साहित्य में आजतक सत्यार्थ प्रकाश की तुलना का कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं लिखा गया। वह अद्वितीय और अपूर्व ग्रन्थ है।

सत्यार्थ प्रकाश के दो खण्ड हैं। प्रथम में १० समुल्लास या अध्याय हैं। द्वितीय खण्ड में ४ समुल्लास हैं। प्रथम खण्ड में यह विवेचना की गई है कि धर्म का सही स्वरुप क्या है? इस खण्ड में यह बताया है कि कौन सी बातें, कौन से विचार और आचरण धर्म हैं। यदि मानव ने सही अर्थों में धर्मपरायण बनना है तो उसके विचार और आचरण किस प्रकार के होने चाहियें यह इस खण्ड में बताया है। दूसरे खण्ड में यह विवेचना है कि धर्म क्या नहीं है। इसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार के विचार और आचरण धर्म नहीं हैं। जिन्हें कि लोग अज्ञान के कारण धर्म मान बैठे हैं। और इसी कारण स्वयं भी कष्ट भोगते हैं और औरों को भी कष्ट में डालते हैं। इस खण्ड के प्रथम (ग्रन्थ के एकादश) समुल्लास में आर्यों (हिन्दुओं) की धर्म सम्बन्धी मान्यता की विवेचना की गई है। ओर उनमें प्रचलित धर्मो की शाखा-प्रशाखाओं में जो विचार और मान्यतायें वास्तव में धर्म कहे जाने के योग्य नहीं हैं उनका विवेचन किया गया है उनकी त्रुटियां और भूलें प्रदर्शित की गई हैं। दूसरे समुल्लास में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करने वाले बौद्ध और जैन मतावलम्बियों तथा ईश्वर को न मानने वाले अन्य नास्तिक लोगों के विचारों की आलोचना करके उनकी भूल दिखाई गई है। तीसरे समुल्लास में बाइबल प्रतिपादित ईसाई धर्म के विचारों की विवेचना की गई है। इस विवेचना में नमूने के तौर पर उन विचारों और आचरणों की भूल दिखाई गई है जिन्हें वस्तूतः धर्म नहीं कहा जा सकता और ईसाई मत वाले जिन्हें अज्ञान के कारण धर्म समझ बैठे है। और चौथे समुल्लास में कुरान प्रतिपादित इस्लाम धर्म के विचारों और आचरणों की भूल दिखाई गई है जिन्हें इस्लाम वाले अज्ञान के करण धर्म मान बैठे हैं जो वस्तुतः धर्म नहीं हैं। धर्म समझे जाने वाले धर्माभासों की विवेचना और उनकी त्रुटियां और भूलें दिखाने के कार्य में ऋषि के मन में किसी प्रकार की द्वेष और निन्दा की भावना काम नहीं कर रही थी। उनके मन में तो करूणा से प्रेरित होकर इन मतों के मानने वालों को शुद्ध सत्य और धर्म का मार्ग दिखाने की ऊंची उपकारमयी भावना काम कर रही थी जैसा कि सत्यार्थ प्रकाश और पिछले इन चारों समुल्लासों की भूमिकाओं से अति स्पष्ट हो जाता है।

जैसा कि अभी ऊपर कहा गया है सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम खण्ड के दस समुल्लासों में धर्म के तत्व की विवेचना की गई है। धर्म केवल पूजा-पाठ का नाम नहीं है। धर्म मानव जीवन के सभी स्तरों और पहलुओं के समग्र विकास से सम्बन्ध रखता है। मानव को जीवन की प्रत्येक स्थिति में क्या बनना चाहिये और क्या करना चाहिये, धर्म इसका प्रतिपादन करता है। मानव जीवन को गहरी और समग्र दृष्टि से देखने पर उसके जो कर्तव्य बनते हैं उनका नाम धर्म है। धर्म मानव के सम्पूर्ण जीवन को दृष्टि में रखता है। धर्म बताता है कि मानव के जीवन का लक्ष्य क्या है और उसे किस किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। इसी व्यापक अर्थ में सत्यार्थ प्रकाश के इन दस सम्मुल्लासों में धर्म की विवेचना की गई है और धर्म के मंगलकारी वास्तविक स्वरूप को प्रदर्शित किया गया है। वेद और उसके पीछे चलने वाले शास्त्रों में मानव के समग्र जीवन को व्याप्त करने वाले धर्म के इसी मंगल-कारी रूप का उपदेश किया गया है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम १० समुल्लासों में इसी वैदिक धर्म की विस्तार से व्याख्या की है। आचार्य महर्षि दयानन्द की यह व्याख्या उनके ऋषित्व के अनुरूप अपने अन्दर एक निराली और अपूर्व मौलिकता रखती है।

वैदिक धर्म की मान्यता में मनुष्य जीवन के दो उद्देश्य हैं। एक सांसारिक अभ्युदय और ऐश्वर्य की प्राप्ति और दूसरा ब्रह्म का साक्षात्कार। असल में मनुष्य मात्र के जीवन का एक ही लक्ष्य है। और वह लक्ष्य है सुख या आनन्द की प्राप्ति। हमें संसार में रहते हुए अपना जीवन इस प्रकार बिताना है जिससे हम सुख और आनन्द में ही रहें, किसी प्रकार के दुःख और कष्ट में हमें न पड़ना पड़े। मनुष्य समाज में रह कर ही, समाज के दूसरे लोगों के सहयोग से ही, सांसारिक ऐश्वर्य और उससे मिलने वाले सुख को प्राप्त कर सकता है। समाज के सहयोग के अभाव में कोई एकमात्र अकेला व्यक्ति न तो किसी प्रकार की सांसारिक समृद्धि प्राप्त कर सकता है और न ही उससे मिलने वाला कोई सुख। समाज में रहकर उसके सहयोग से ही कोई व्यक्ति सुख-समृद्धि प्राप्त कर सकता है। समाज व्यक्तियों से मिल कर बनता है। इसलिये व्यक्ति इस प्रकार के गुणों वाले होने चाहियें कि वे रहकर उसके सहयोग से अपने लिये सुख-समृद्धि प्राप्त कर सकें। और समाज की रचना या संघटन इस प्रकार का होना चाहिये कि उसमें रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति को समुचित सुख-समृद्धि प्राप्त हो सके। वैदिक धर्म में इन दोनों ही बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

उत्कृष्ट गुणों वाले सही प्रकार के मानव का र्निाण करने के लिये वैदिक धर्म कहता है कि माता-पिता को अपने बालकों के निर्माण पर तभी से ध्यान देना चाहिये जब वे गर्भ में हों। प्रत्युत उससे भी पहले जबकि माता-पिता गर्भाधान की तैयारी करें तभी से उन्हें अपने बालकों के भावी निर्माण पर ध्यान देना चाहिये। गर्भाधान से पूर्व माता-पिता को क्या तैयारी करनी चाहिये, उन्हें अपना खान-पान, रहन-सहन और विचार एवं मनोभावनायें किस प्रकार की रखनी चाहियें, गर्भावस्था में माता-पिता का, विशेष कर माता का खान-पान, रहन-सहन, और विचार एवं मनोभावनायें किस प्रकार की रहनी चाहियें, इन सब बातों पर सत्यार्थ प्रकाश में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। बालकों के उत्पन्न हो जाने पर आरंभ की पांच-सात वर्ष की कच्ची आयु तक उनकी देख-भाल माता-पिता को किस प्रकार करनी चाहिये और उन पर किस प्रकार के संस्कार डालने चाहियें और उन्हें घर में किस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिये, इस सम्बन्ध में भी वहां विशद विचार किया गया है। फिर आगे बालक शिक्षणालयों में जायेंगे। शिक्षणालयों की प्राकृतिक परिस्थितियां कैसी हों, उनका आन्तरिक मानवीय वातावरण कैसा हो, वहां छात्रों की दिन-चर्या कैसी हो, उन्हें पढ़ाया क्या-क्या जाये, उन्हें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की विद्याओं की शिक्षा दी जाये, शिक्षकों का चरित्र कैसा हो, उनका रहन-सहन कैसा हो, छात्रों और शिक्षकों का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा हो, बालकों के शिक्षणालय किस प्रकार के हों और बालिकाओं के किस प्रकार के, इत्यादि सभी बातों पर सत्यार्थ प्रकाश में भली भांति विचार किया गया है। यदि बाल्यावस्था और युवावस्था में बालकों को सही प्रकार की शिक्षा दी जाये तो उन्हें चरित्रवान् और श्रेष्ठ गुणों वाला मानव बनाया जा सकता है।

मनुष्य समाज की रचना और संघटन पर भी सत्यार्थ प्रकाश में विचार किया गया है। मनुष्यों में प्रधान रूप से चार प्रकार की प्रवृत्तियां हुआ करती हैं। इन प्रवृत्तियों के आधार पर वैदिक धर्म में मनुष्य-समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों या विभागों में विभक्त किया गया है। जो लोग ज्ञान-विज्ञान और सत्य के उपार्जन और प्रचार में अपना जीवन समर्पित कर देंगे और इस प्रकार समाज की सेवा करेंगे वे ब्राह्मण कहे जायेंगे। जो लोग अन्याय और अत्याचार को मिटाने का व्रत ले लेंगे और इस प्रकार समाज की सेवा करेंगे वे क्षत्रिय कहे जायेंगे। जो लोग कृषि, पशु पालन, व्यापार और भांति-भांति के व्यवसाय तथा उद्योग-धंधों के द्वारा राष्ट्र की भौतिक सम्पदा को उत्पन्न करें और बढ़ायेंगे और उस संपदा का राष्ट्र के लोगों में वितरण करेंगे और इस प्रकार समाज की सेवा करेंगे वे वैश्य कहे जायेंगे। जो लोग किसी प्रकार का बौद्धिक कार्य कर सकने की क्षमता नहीं रखेंगे और केवल शारीरिक श्रम ही कर सकेंगे और इस श्रम के द्वारा ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सेवा करके उन्हें अपने-अपने कार्य करने में सहायता देंगे और इस प्रकार समाज की सेवा करेंगे उन्हें शूद्र कहा जायेगा। ब्राह्मणादि वर्णों की व्यवस्था जन्म के आधार पर नहीं, प्रत्युत गुण-कर्म की योग्यता के आधार पर होगी। ब्राह्मण का बालक भी बौद्धिक योग्यता न रहने पर शूद्र बन सकता है और शूद्र का बालक भी योग्यता अर्जन करने पर ब्राह्मण बन सकता है। ब्राह्मणादि किसी भी वर्ण का बालक उस-उस वर्ण की योग्यता अर्जित कर लेने पर उस-उस वर्ण का कहलायेगा। वैसी योग्यता न होने पर यह योग्यतानुसार दूसरे वर्णों का व्यक्ति कहलायेगा। सत्यार्थ प्रकाश में ब्राह्मणादि की योग्यता, गुण-कर्म और कार्यों और उनके द्वारा की जाने वाली समाज की सेवा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है।

वैदिक धर्म में जहां मानव-समाज को ब्राह्मणादि चार विभागों में विभक्त किया गया है वहां मानव के व्यक्तिगत जीवन को भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों में बांटा गया है। ब्रह्मचर्य काल में बालक को यम-नियमों का संयम और पवित्रता का जीवन व्यतीत करते हुए भांति-भांति के विद्या-विज्ञानों का अध्ययन करना होता है और ब्राह्मणादि में से अपनी रुचि के अनुसार किसी एक वर्ण को चुनकर उसकी तैयारी करनी होती है। गृहस्थ में अपने वर्ण के कर्तव्य कर्मों के अनुसार जीवन बिताकर समाज की सेवा करनी होती है। वानप्रस्थ में कमाई के सब धन्धे छोड़कर स्वाध्याय और आत्म-चिन्तन में लगे रहना होता है और शिक्षणालयों में बालकों को निःशुल्क शिक्षा देकर अथवा इसी प्रकार के अन्य सेवा के काम करके समाज की सेवा करनी होती है। सन्यास में वि-तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा का परित्याग करके सर्वथा विरक्त होकर जनता को सत्य और धर्म का उपदेश करते हुए विचरते रहना होता है। संन्यास सबके लिये नहीं है। संन्यास में वही व्यक्ति जा सकता है जिसने अपने अन्दर पूर्ण ब्राह्मणत्व उत्पन्न कर लिया है। सत्यार्थ प्रकाश में इन चारों आश्रमों में रहकर व्यक्ति ने जो कर्त्तव्य और आचरण करने हैं उनका विस्तार से वर्णन किया गया है। शिष्य और गुरु, पति और पत्नी, माता-पिता और सन्तान, भाई और बहिन, बूढ़े और जवान, गृहस्थ और अतिथि, सभी के एक-दूसरे के प्रति व्यवहार और कर्तव्यों का प्रतिपादन सत्यार्थ प्रकाश में किया गया है। वानप्रस्थ और संन्यासी के अपने-अपने कर्त्तव्यों और समाज के प्रति उनके उत्तरदायित्वों पर भी वहां विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

कोई भी समाज-संघटन अपना कार्य भली भांति नहीं कर सकता और अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह किसी उत्तम राज्य-व्यवस्था द्वारा संचालित और शासित न हो। ऋषि दयानन्द ने वेदादि शास्त्रों के आधार पर सत्यार्थ प्रकाश में राज्य-व्यवस्था का भी बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। वहां राज्य-शासन की प्रजातंत्रीय पद्धति को सर्वोत्तम बताया गया है। समग्र धरती की चक्रवर्ती राज्य-व्यवस्था तक का वर्णन किया गया है। सैन्य-संघटन, पुलिस, न्याय-व्यवस्था, अपराधों पर दंड-विधान, कर विधान आदि सभी शासन-सम्बन्धी बातों पर विचार किया गया है। प्रजाजनों के प्रति राजकर्मचारियों के कर्तव्यों और राज्य के प्रति प्रजाजनों के कर्तव्यों को वहां बड़े विशद् रुप में प्रतिपादित किया गया है।

यदि धरती के मानव सत्यार्थ प्रकाश में प्रतिपादित वर्णाश्रम-व्यवस्था वाली समाज रचना में संघटित होकर अपना जीवन विताने लग जायें और वहां वर्णित अपने-अपने कर्तव्यों का पूर्ण रुप से पालन करने लग पड़ें तो उन्हें सब प्रकार का सांसारिक अभ्युदय और सुख-समृद्धि प्राप्त हो सकती है।

मानव निरवलम्ब आकाश में नहीं रहा है। उसका निवास इस प्राकृतिक विश्व में है। उसका जीवन और सुख-समृद्धि सब कुछ उसके चारों और फैले हुए इस विश्व पर निर्भर करता है। इसलिये उसके लिये यह भी आवश्यक है कि वह जाने कि इस विश्व के निर्माण में मूल तत्व कौन से हैं, इसके निर्माण का प्रयोजन क्या है? और उसके निर्माण की प्रक्रिया क्या है ? वैदिक धर्म इस प्रश्न का भी समाधान करता है। सत्यार्थ प्रकाश में इस सम्बन्ध में बड़े निस्तार से विचार किया गया है। यहां इस विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। इस विश्व के निर्माण में तीन मूल तत्व काम कर रहे हैं। इसकी भौतिक सामग्री या उपादान कारण प्रकृति है। इसका रचयिता या निमित्त-कारण परमेश्वर है। और परमात्मा ने इसकी रचना जीवों को उनके कर्मों का फल देने, अच्छे कर्म करके अपना सांसारिक जीवन सुख-समृद्धिशाली बनाने और अन्त में ईश्वर साक्षात्कार करके मोक्ष का ब्रह्मानन्द रस पान करने का अवसर देने के लिये की है। सत्यार्थ प्रकाश में इस प्रकार के तत्वों पर भी विचार किया गया है। ईश्वर, जीव प्रकृति के स्वरुप पर वहां गहरा दार्शनिक विचार प्रस्तुत किया गया है।

यहां ईश्वर साक्षात्कार और मोक्ष में ब्रह्मानन्द रस-पान की बात आ गई है। मनुष्य को सांसारिक अभ्युदय और सुख-समृद्धि प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न तो करना ही चाहिये परन्तु मानव में जो परिपूर्ण सुख प्राप्त करने की नैसर्गिक इच्छा रहती है वह इस संसार में रहते हुए पूरी नहीं हो सकती. चाहे यहां कितनी ही अधिक भौतिक उन्नति क्यों न कर ली जाये। यहां तो सुख के साथ दुःख भी मिला ही रहता है अपने आप को पूर्ण रुप से निर्मल बना लेने पर भगवान् आत्मा को एक अति लम्बे काल तक, जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त करके मोक्ष की अवस्था में अपना साक्षात्कार कराके अपने ब्रह्मानन्द का पान कराते हैं। इस अवस्था में जीव को दुःख से सर्वथा रहित परम सुख प्राप्त होता है। इसे मोक्ष की अवस्था कहते हैं। वैदिक धर्म में मोक्ष प्राप्त करना जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। मोक्ष पवित्र आचरण, अष्टांग योग का अभ्यास, विवेक, वैराग्य, षट्कसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व आदि साधनों के सेवन से प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्त करने के जितने भी उपाय शास्त्रों में वर्णित किये गये हैं उन सबका ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में अति विशद् वर्णन किया है।

इस प्रकार मानव जीवन के वैयक्तिक, कौटुम्बिक, सामाजिक और राजनैतिक. सांसारिक और आध्यात्मिक सभी पहलुओं पर सत्यार्थ प्रकाश में व्यापक रुप से विचार किया गया है और उसके जीवन के इन सभी पहलुओं को पूर्ण रुप से उन्नत और विकसित करने के साधन और उपाय बताये गये हैं। इन उपायों और साधनों के अनुसार जीवन बिताने का नाम ही वस्तुतः धर्म है। मानव जीवन के समग्र विकास का इस प्रकार का उपदेश संसार के अन्य किसी एक ग्रन्थ में नहीं किया गया है। इस दृष्टि से सत्यार्थ प्रकाश एक अपूर्व और अलौकिक ग्रन्थ है और मानव के समग्र विकास की कुंजी है।

इस महान् ग्रन्थ की रचना-शताब्दी के अवसर पर मैं अपने आचार्य ऋषि दयानन्द को यह लोकोत्तर ग्रन्थ लिखने के लिये शत-शत प्रणाम करता हूं और प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि यह ग्रन्थ मानव-मात्र के प्रतिदिन स्वाध्याय का ग्रन्थ बन जाये।

---

१. सृष्टि और प्रलय के आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्षों को छत्तीस हजार गुणा पर प्राप्त होने वाले वर्षों तक।

सत्यार्थ प्रकाश

—मदन मोहन विद्यासागर

★

जब मानव ने सर्वप्रथम आँख खोली तो उसने इस रंग बिरंगी सृष्टि को अपने सामने पूर्ण रूप से अलंकृत पाया। यह उसके भोग के लिये थी, जिसे उसने अन्यों के साथ मिलकर भोगना था। जिन नियमों के अर्न्तगत उसने इस सृष्टि के नाना पदार्थों को अपने भोग व विनियोग के अनुकूल बनाना था, उस नियमावली का नाम "वेद" है, जो 'ऋग-साम-यजुः-अथर्व' नाम से प्रसिद्ध है।

आर्ष परम्परा के अनुसार परब्रह्म-परमेश्वर ने "अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा" नामक चार पवित्रात्मा ऋषियों को क्रमशः इन चार वेदों का ज्ञान उनके हृदय में दिया। उनसे प्रजापति ब्रह्मा ने इस ज्ञान को ग्रहण करके, सबके कल्याणार्थ इसका "अध्यापन" कर सबको सुनाया।

उसके आधार पर "वैवस्वत मनु" ने मानवों को एक समाज में बान्धने के लिये "विधिनिषेधात्मक धर्म की कल्पना की, जिसे "मनुधर्मशास्त्र" कहते हैं। वेद किसी "मत" का प्रतिपादक ज्ञान न होकर धर्म का बोधक ज्ञान है। परमेश्वर किसी मत की स्थापना न कर, सब पदार्थों में उन उन के मूल "गुण-कर्म-स्वभाव" का नियमन करता है, जो कि उन पदार्थों का "धर्म" कहाता है। जड़ अग्नि आदि में "ताप, प्रकाश" रूप 'धर्म' का नियमन करता है और चेतन मनुष्य को बुद्धि दी है। जिस बुद्धि का धर्म, ज्ञान है। वस्तुतः इसी का नाम "वेद" है, जो सृष्टि के आदि में मनुष्य को दिया जाता है। मनु ने उसी धर्म का बोध सुव्यवस्थित ढंग से अपने धर्मशास्त्र में कराया है। सो मनु का ग्रन्थ जो वर्तमान में मनुस्मृति के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी 'धर्मशास्त्र' ही है। 'धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः'। वर्तमान काल तक पहुंचते-पहुंचते इस धर्म का व्यावहारिक रूप बदल गया। महाभारत के समय में श्री वेदव्यास ने बीते युग के सारे धर्म व वृत्तान्त का संग्रह महाभारत रूप में किया। और पुनः वेदधर्म को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया।

महाभारत से लेकर गत शताब्दी तक का समय आर्यराष्ट्र के पतन का समय है। निस्सन्देह इस कालावधि में भी कई "महान् आत्मायें" इस पावन भूमि पर जन्मी, पर वेद व्यास के पश्चात् दयानन्दपर्यन्त कोई "ऋषि आत्मा" ने जन्म नहीं लिया, जो वेदों के धर्म का साक्षात् प्रचार करता। जो प्रसिद्ध आचार्य श्री शंकर आदि हुए हैं, उन्होंने नाम 'वेदधर्म उद्धार' का लिया, पर मनु राजर्षि के समान धर्मस्थापन का कार्य न कर, अपने अपने मतों व नये वाद सम्प्रदायों का प्रारम्भ किया।

वर्तमान युग में युगद्रष्टा ऋषि दयानन्द ने, पुनः वेद ज्ञान का साक्षात् किया और धर्म चक्रपरिवर्तन करके पुनः "वेदधर्म" की स्थापना की।

जैसे मनु ने मानव "धर्म शास्त्र" बनाया, वैसे ही ऋषि ने 'सत्यार्थ प्रकाश' बनाया। इसमें सत्य का प्रकाश किया है। क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, इसलिये इस 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ में वस्तुतः "वेदधर्म" का प्रतिपादन ही है। इस रचना में ऋषि ने अपने पूर्ववर्त्ती उन दो ऋषियों के अर्थात् राजर्षि मनु और और ब्रह्म ऋषि वेदव्यास के ग्रन्थों का आधार रखा। ऋषि ने मुख्यतः "मनुस्मृति" और फिर उससे उतरकर महाभारतान्तर्गत "विदुर नीति" का आश्रय लिया है।

ऋषि दयानन्द ने इस ग्रन्थ में मानव के पूर्ण उत्थान अर्थात् अभ्युदय एवं निःश्रेयस के लिये जितनी आवश्यक उपादान सामग्री है, वह प्रशस्तता के साथ संगृहीत की है। इसमें मूल सामासिक सत्यों का प्रकाश किया है। यह मतग्रन्थ नहीं, यह 'मनुस्मृति' की परम्परा जैसा ही 'धर्मग्रन्थ' है। इसके द्वारा मानव जाति में भेदभाव की सृष्टि कर एक नई बिरादरी बनाने का उद्देश्य

नहीं है। जितना भी मतग्रन्थ या अपने को 'पवित्र धर्म पुस्तक' नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, उनका किसी एक के द्वारा विवेकपूर्वक प्रणयन नहीं हुआ है। पर वे ग्रन्थ प्रायः 'संकलन' या भिन्न-भिन्न समयों में रचित वाणियों के संग्रह मात्र हैं, परन्तु यह ग्रन्थ एक ही व्यक्ति ऋषि दयानन्द की रचना है, जिसमें मानव जीवन के क्रमिक विकास की पूर्ण सामग्री का संग्रथन है।

मानव मात्र के अन्दर ऐक्य बुद्धि तभी हो सकती है, समानाधिकार की बात तभी चल सकती है, जब कि उनको एक केन्द्र में बांधने वाला कोई पदार्थ हो। इसलिये ऋषि दयानन्द ने" शं नो मित्रः . . . . " मन्त्र से प्रारम्भ कर एक परमात्मा का वर्णन प्रथम समुल्लास में किया है। जब परमात्मा एक है तो उसका नाम भी एक होना चाहिये, अतः ऋषि ने उसके मुख्य निज नाम "ओ३म्" का प्रतिपादन किया है।

ये स्त्री पुरुष एक रहें, इसलिये इनकी वाणी व भाषा एक होनी चाहिए सो संस्कृत भाषा पढ़ाने की बात और सबका चाल चलन एक हो। सो "चरित्र निर्माण की शिक्षा" के लिये द्वितीय समुल्लास लिखा है।

इन मानवदेहधारी प्राणियों के विचार व मन एक हों, सो तृतीय समुल्लास में पूर्णतः सामासिक पठन पाठन प्रणाली का विधान किया है।

ये स्त्री पुरुष द्वितीय समुल्लास में प्रतिपादक "धर्माचरण" का और तृतीय समुल्लास में उल्लिखित "धार्मिक विद्या" को फलीभूत करने के लिए परस्पर मिल "अर्थ-काम" की साधना के लिये सुशिक्षित सुविद्य उत्तम विश्व नागरिकों की सृष्टि करें।

अपने अर्थ-काम की सन्तुलित तृप्ति कर सर्वोदय के निमित्त निष्काम भाव से जीवन बिताने की शिक्षा के लिए पांचवा समुल्लास। इस सारी व्यवस्था के नियमन के लिए उत्तम राज्य शासन का विधायक षष्ठ समुल्लास।

इन धर्मों के पालन के लिये जिस आदि सर्वोच्च शक्ति ने यह सृष्टि बनाई है, उस ईश्वर के सत्य स्वरूप तथा सृष्टि नियमों के प्रतिपादक उसके दिये वेद ज्ञान के वर्णन के लिये सप्तम समुल्लास।

इस सृष्टि और शरीर जिसमें आकर जीव भोग भोगता और आम नवीन कर्म करता है, उसकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का विषय बताने के लिये अष्टम समुल्लास और मनुष्य इस सृष्टि में क्यों और कैसे फंसता है? कैसे उसकी मुक्ति होती है? इसके लिये नवम समुल्लास और आचार-अनाचार, भक्ष्य-अभक्ष्य एवं कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्देशक दशम समुल्लास लिखा है।

यह सत्यार्थ प्रकाश का पूर्वार्द्ध है, इसमें "स्वमतस्थापन" अर्थात् **जिस वेदधर्म का पुनरूद्धार स्वामी दयानन्द चाहते हैं उसका मण्डन किया है।**

इसके पश्चात् ऋषि दयानन्द अज्ञान, अविद्या और पाखण्ड में फंसी मानव जाति को सावधान करना चाहते हैं, उन स्वार्थी पोपों द्वारा चलाये गये मतमतान्तरों से, जिनके झगड़ों के कारण मनुष्य दुखसागर में डूबा है। यह उत्तरार्द्ध है और इसमें चार समुल्लास हैं। इनमें आर्यावर्त्तीय तथा अन्य कुरानी-किरानी मतों का विवेचन किया है। इनका खण्डन किये बिना, सत्य धर्म का प्रकाश हो ही नहीं सकता था। जब तक आकाश में छाये घन-घोर बादल छटते नहीं, तब तक सूर्य की प्राणदायिनी किरणें फूटेंगी कैसे?

यदि किशोर पढ़ेंगे तो उनके जीवन का मार्ग प्रशस्त होगा, उन्हें अपना शारीरिक व बौद्धिक विकास करने की सामग्री मिलेगी, उठने की प्रेरणा मिलेगी।

इसे तरुण पढ़ें ताकि इससे निर्दिष्ट जीवन दिशा के द्वारा अपना भविष्य बना सकें।

गृहस्थ पढ़ें ताकि उन्हें अपने जीवन का सच्चा उद्देश्य पता चले और इसके प्रकाश में अपना उज्वल भविष्य बना सकें।

प्रौढ़जन पढ़ें ताकि जीवन यापन करते समय व्यवहार में हो जाने वाली त्रुटियों व दोषों को जान, अपना सुधार कर सकें।

वृद्धजन पढ़ें ताकि वर्तमान जीवन में अपनी बुद्धि, योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार अपने किये कर्मों का स्मरण कर, आगामी जीवन को उत्तम बनाने का प्रयत्न करें।

ब्रह्मचारी - विद्यार्थी पढ़ें ताकि सूक्ष्म व उत्तम विद्या को ग्रहण कर, वह अपने जीवन की नींव पक्की कर सकें।

ब्राह्मण - अध्यापक वर्ग पढ़ें ताकि उन्हें सच्ची शिक्षा व उपयोगी विद्या के उद्देश्य का ज्ञान हो सके और सब स्त्री-पुरुषों को, बिना जाति-कुल मतभेद के समान रुप से धार्मिक और विद्वान् बना सकें।

क्षत्रिय, सैनिक, राज्याधिकारी पढ़ें ताकि वे अपने कर्त्तव्यों का बोध प्राप्त कर राष्ट्र की अभिवृद्धि करें, साधु परित्राण व दुष्कृत विनाश कर विश्व में मतविहीन धर्मराज्य की स्थापना कर सकें।

वैश्य-व्यापारी पढ़ें ताकि वे धर्म का ज्ञान प्राप्त कर "पापी लक्ष्मी" को कमाने से बच्चें और धर्मानुकूल पुरुषार्थ कर "पुण्या लक्ष्मी" प्राप्तकर धन धान्य की वृद्धि करें।

आर्यजन पढ़े ताकि वे जीवन के उद्देश्य 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' रूप पुरूषार्थ चतुष्टय को समझ, अभ्युदय और निःश्रेयस के सुख को प्राप्त करें।

विरोधी मतवादी भी पढ़ें ताकि उन्हें भी अपने अपने मतों के दोषों व त्रुटियों का सम्यक् ज्ञान हो जाये।

इस प्रकार सभी पढ़ें ताकि सबको समानता स्वतन्त्रता, भ्रातृ-भाव का पाठ मिलें।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत-सत्यार्थ प्रकाश

—वैद्य गुरुदत्त जी वैद्यभास्कर, आयुर्वेद वाचस्पति, उपन्यासकार

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दि में भारत में समग्र क्रान्ति उत्पन्न करने वाली एक मात्र पुस्तक स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश लिखी गयी थी।

देश में कई नेता हुए हैं और हो रहे हैं, जो समाज में समग्र क्रान्ति उत्पन्न करने का प्रयास करते रहे हैं अथवा कर रहे हैं। यह निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि वे न तो समग्र क्रान्ति के अर्थ जानते हैं, न ही उनके प्रचार समग्र क्रान्ति लाने में सक्षम हैं। यह श्रेय एक मात्र सत्यार्थ प्रकाश को ही दिया जा सकता है।

तनिक विचार करें कि जब यह पुस्तक लिखी गयी थी, तब भारत देश की अथवा भारतीय समाज की अवस्था क्या थी? उसकी तुलना आज की अवस्था से की जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि देश में समग्र क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ है और उसमें इस पुस्तक का सर्वश्रेष्ठ योगदान है।

समग्र क्रान्ति से हमारा अभिप्राय राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक वैचारिक, दार्शनिक, अर्थात् यह कि सब मानव क्रिया कलापों से है। इसका अर्थ है कि देश में रहने वालों के प्रत्येक व्यवहार में मूल-चूल परिवर्तन हो रहा है।

सत्यार्थ प्रकाश लिखा गया १८७४ में। उस समय देश की अवस्था का दर्शन करने से पता चलता है कि :---

(१) पूर्ण भारतवर्ष हिमालय से समुद्र पर्यन्त और सिन्धु नदी से ब्रह्मपुत्र पर्यन्त, वरन् इन सीमाओं से भी पार, बर्मा और पाख्तूनिस्तान भी विदेशीय (अंग्रेजों के) लोह नियंत्रण में जकड़ा हुआ था।

★

सन् १८५७ का स्वातंत्र्य संग्राम पूर्ण पराजय को प्राप्त हो चुका था और अभी देश में कोई राजनीतिक सभा अथवा व्यक्ति "चू" करता भी दिखाई नहीं देता था। उस समय सत्यार्थ प्रकाश में यह शब्द लिखे होने अविस्मरणीय हैं। स्वामी जी ने लिखा है—

"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।"

(सत्यार्थ प्रकाश आठवां समुल्लास)

तिलक जी का नारा "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" बहुत पीछे १९०६ में घोषित हुआ और कहा जाता है कि तिलक जी ने यह नारा श्री रानाडे से प्राप्त किया था और उन्होंने यह सत्यार्थ प्रकाश में पढ़ा था।

(२) धार्मिक क्षेत्रों में पेड़ों, पत्थरों, मिट्टी के खिलौनों, घरों में लगी कीलियों (जिन्हें पीर कहा जाता था) आदि के पूजन को धर्म समझा जाता था। प्रातः शिवालय जा कर जल चढ़ाना और दिन भर झूठ-फरेब का व्यापार करना मुक्ति का साधन समझा जाता था।

(३) सामाजिक व्यवहार में अछूतों और स्त्रियों को पढ़ने, विशेष रूप में वेद पढ़ने-सुनने से वंचित रखा जाता था। स्त्रियों से मानवेतर व्यवहार किया जाता था। सती प्रथा और विधवाओं के पुर्नविवाह में बाधा से उन पर अत्याचार किया जाता था।

पूर्ण भारतीय समाज, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई समझे जाते हैं, छूआ-छूत, ऊंच-नीच और अधिकारों में भेदभाव इत्यादि अनेक प्रकार के भ्रम मूलक विश्वासों में फंसे हुए थे।

पशुओं, यहां तक कि मनुष्यों की भी देवताओं के सम्मुख बलि चढ़ा कर उनकी हत्या की जाती थी। इन सबको धर्म माना जाता था।

(४) दार्शनिक दृष्टि से भी भारतीय घोर पतन की ओर जा रहे थे।

कोई परमात्मा को गोपियों से रास रचाने वाला और कोई श्वेत दाड़ी-मूछ वाले, सातवें आसमान पर बैठे हुए, पृथिवी से सम्पर्क बनाने के लिये फरिश्तों के आश्रय वाला मानते थे। कहीं परमात्मा को मुसलमानों के भय से भयभीत कुंए में जाकर छुप जाने वाला मानते थे। और प्रायः अनेकानेक देवी-देवताओं को परमात्मा का स्वरूप माना जाता था। यहां तक कि कई लोग परमात्मा को वराह इत्यादि के स्वरूप में अवतार लेने वाला मानते थे।

(५) जीवात्मा के विषय में तो बहुत संख्यक लोग इसे भ्रम मानते थे। उनके विचार में सब कुछ ब्रह्म (परमात्मा) ही है, ऐसा समझते थे।

वस्तुस्थिति यह थी कि देश के चोटी के विद्वानों से लेकर अनपढ़ सामान्य बुद्धि के लोगों तक "**अहं ब्रह्मास्मि**" के घोर अज्ञान रूपी अन्धकार में फंसे हुए थे।

(६) अनपढ़, मूर्ख, चरित्र हीन लोग समाज में धर्म-पुजारी बने हुए थे। देश में धनी-मानी, पढ़े-लिखे लोग प्रलोभनों में फंसे हुए अथवा स्थिति से भयभीत विदेशियों, विधर्मियों और अन्यायियों की चाटुकारी करते नहीं थकते थे। निर्धन बेचारे भूखे पेट बच्चों और औरतों को विधर्मियों के हवाले कर रहे थे। मध्यम वर्ग के लोग अपनी जीविकोपार्जन में लगे हुए देश, राष्ट्र, समाज और धर्म-कर्म को विस्मरण कर चुके थे।

ऐसे समय में महर्षि स्वामी दयानन्द ने यह ग्रन्थ प्रकाशित करवाया और इसने देश में क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया।

यहां क्रान्ति के अर्थ वर्णन कर दिये जायें तो ठीक होगा। कठिनाई से पार करने वाली समस्या को द्रुतगति से बदल देना, क्रान्ति कहाती है।

शब्दकोष में शब्द है द्रुतगति से, परन्तु गति एक सापेक्षिक शब्द है। भारत देश में मूर्खता, दुर्बलता, अशिष्टता और असमाजिकता का चलन होते हुए कम से कम पांच सहस्र वर्ष हो चुके थे।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि जितने असमाजिकता एवं अधार्मिकता के व्यवहारों का हमने ऊपर वर्णन किया है, उनका श्रीगणेश महाभारत काल में ही हो चुका था। उस समय भी एकलव्य **की घटना घट सकती थी। कुलवधू की भरी सभा में नंगा करने की** बात हो सकती थी। पुत्र, माता-पिता की बात को दुत्कार सकता था। घर के पुरखा से वचन देकर भी बच्चे मद्य का सेवन कर सकते थे। ब्राह्मण सेवा कार्य करने लगे थे और स्वामी के अधर्मयुक्त व्यवहार का पक्ष लेने में अपने को विवश मानते थे।

हम समझते हैं कि देश और समाज में पतन तब से ही आरम्भ हो चुका था। इसी कारण महाभारत का लिखने वाला भी अपने ग्रन्थ के अन्त में हाथ उठा-उठा कर कहता हुआ लिखा गया है कि मैं जीवन भर इनको कहता रहा कि धर्म का पालन करो, धर्म का पालन करो परन्तु ये नहीं माने।

तब से चला हुआ पतन और मूर्खता का व्यवहार एक ही शताब्दि में पूर्ण रूप से उन्मूलन नहीं हो सकता था। इसको करने के लिए कई शताब्दियों की आवश्यकता है। परन्तु इस दिशा में प्रयत्न करने वाली पुस्तक एकमात्र सत्यार्थ प्रकाश ही कही जा सकती है। इसने यह व्यापक पतन जड़ से उखाड़ देने का प्रयत्न आरम्भ किया है और इस प्रकार का व्यापक प्रयास करने वाली पुस्तक अभी तक देश में और नहीं लिखी गयी।

पचास शताब्दियों से एकत्रित हो रहा कूड़ा-करकट निकालने में दो-तीन शताब्दियो लग जायें यो कुछ अधिक नहीं। हमारा अभिप्राय है कि वह समग्र क्रान्ति जिसने पचास से अधिक शताब्दियों से बिगड़ रहे समाज को सन्मार्ग दिखाया है, वह अभी पूर्ण नहीं हुआ। अतः सत्यार्थ प्रकाश के विशाल प्रचार की अभी आवश्यकता है।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रवक्ता महर्षि स्वामी दयानन्द से आरम्भ किया हुआ कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ। इसमें कार्य की दुरूहता के अतिरिक्त भी कारण उपस्थित हुए हैं। स्वामी जी द्वारा आरम्भ की गई क्रान्ति का विरोध करने वाले तो थे ही। क्रान्ति उनके विपरीत तो थी ही, परन्तु कुछ ऐसे भी लोग उत्पन्न हुए हैं जो स्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट दिशा में देश में परिवर्तन करने का बहाना करते हुए भी अपनी मूर्खता के कारण अथवा दुर्बलता के कारण क्रान्ति की दिशा भ्रष्ट करते रहे हैं।

ऐसे महानुभावों का नाम लेने की आवश्यकता नहीं, परन्तु स्वदेश प्रेम को संस्कृति और सभ्यता से पृथक करने वाले राज्य धर्म को स्वधर्म से तलाक देने वाले, दुर्बलता अथवा व्यवहारिकता के बहाने बना, क्रांति की दिशा को बदलने वाले देश में उत्पन्न होते रहे हैं।

मजेदार बात यह हुई है कि भारतीय समाज और देश में क्रांति का विरोध करने वाले उन क्रान्तिकारियों के सहायक हो गये जो सत्यार्थ प्रकाश द्वारा आरम्भ की गई क्रान्ति का लक्ष्य अपनी दुर्बलता के कारण बदल रहे थे।

परिणाम यह हुआ कि कदाचित् एक शताब्दि में सम्पन्न होने वाला कार्य अभी एक दो शताब्दियां और लेता हुआ प्रतीत होता है।

इस पर भी हमारा विश्वास है कि यह क्रान्ति पूर्ण होगी क्योंकि इसके सम्मुख सत्य और मानव कल्याण ही लक्ष्य हैं। और वह लक्ष्य, जैसे सत्यार्थ प्रकाश में वर्णन किये गये हैं, संक्षेप में इस प्रकार कहे जा सकते हैं—

(१) वेद सब सत्य विद्याओं के उपदेश हैं।

(२) मानव कल्याण (धर्म) की सब बातें वेद में हैं।

(३) परमात्मा एक है। इसके अनेक नाम हैं। गुण और कार्य अनेक होने के कारण। इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि नाम भिन्न-भिन्न गुणों के कारण परमात्मा का ही वर्णन करते हैं।

इस पर भी परमात्मा का 'ओ३म्' सर्वश्रेष्ठ नाम है। इससे परमात्मा सत्-चित्-आनन्द, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, शरीर रहित, अविकारयुक्त, नस-नाड़ियों के बिना सम्पूर्ण विश्व का संचालन करने वाला, सर्वत्र पवित्र, पाप रहित, स्वयंभू, सर्वज्ञ और अपने ज्ञान को ठीक-ठीक सब को देने वाला एवं सब का कल्याण करने वाला शाश्वत, अविनाशी तत्त्व है।

(४) ऐसी सत्ता के चिन्तन और पूजन से मनुष्य का कल्याण होता है। इस पूजन और चिन्तन के लिये सर्वश्रेष्ठ नाम "ओ३म्" है। सब आर्य जनों को परमात्मा की स्तुति अर्थात् गुण और कर्म का चिन्तन करना चाहिये।

(५) मनुष्यों में केवल दो वर्ग ही हैं। दैवी प्रवृत्ति वाले और आसुरी प्रवृत्ति वाले। दैवी प्रवृत्ति पालन करने योग्य है। आसुरी प्रवृत्ति घोर पतन का कारण होती है।

(६) स्वहितकारी धर्मों में मनुष्य स्वतंत्र है और पर-हितकारी धर्मों में समाज के अधीन है।

(७) गुण, कर्म, स्वभावानुसार कार्य, पद और प्रतिकार प्रत्येक का अधिकार है।

(८) परमात्मा का अस्तित्व एक वैज्ञानिक तथ्य है। अतः आर्य लोग आस्तिक होते हैं।

(९) कर्म का फल मिलता है। इस जन्म में अथवा किसी भावी जन्म में। कर्म के फल से कोई बच नहीं सकता।

(१०) मनुष्य अपने भविष्य को अपने कर्मों से ही सुधार सकता है। बिना प्रयत्न किये फल नहीं मिलता।

(११) भारतवर्ष का भूतकाल बहुत उज्जवल रहा है और भविष्य भी उज्जवल होगा। इसमें संशय नहीं। कारण यह कि वेद निधि भारत के पास अभी तक सुरक्षित रखी है। यह परमात्मा का ज्ञान है।

(१२) इस भूमण्डल में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिसका इतिहास सृष्टि रचना के समय से मिलता है। सृष्टि-रचना का सत्य वृत्तान्त वेद से आरम्भ होकर भारतीय वाङमय में विशद् रूप में मिलता है।

(१३) वेद ज्ञान से विच्छिन्न हो जाने के कारण अन्य देश सत्य से दूर हो गये हैं। वेद की शरण में आने पर ही वे सत्य ज्ञान का भोग कर सकेंगे।

(१४) सत्य ज्ञान की परख वेदादि प्रामाणिक ग्रन्थों से ही हो सकती है, परन्तु इसकी एक अन्य परख भी है, वह है प्रत्यक्षादि प्रमाण।

संक्षेप में, यह है सत्यार्थ प्रकाश अर्थात् पूर्ण जगत के वास्तविक अभिप्राय को समझाने वाला ग्रन्थ।

भारत देश के घोर पतन की ओर जाते-जाते हाथ पकड़ कर सन्मार्ग दिखाने वाला ग्रन्थ, सिद्धान्ततः यह पृथ्वी पर के पूर्ण मानव समाज का पथ-प्रदर्शन करने वाला ग्रन्थ है।

सत्यार्थ प्रकाश महान् है

— सत्य अर्थ का दिव्य प्रकाशक 'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है।
जिसकी आभा से आलोकित जग करता जयगान है॥

सत्याअर्थ का दिव्य प्रकाशक ऽऽ
जब पनप रहे पाखण्डों का साम्राज्य चतुर्दिक् छाया था।
जब देश में अन्ध-विश्वास, आडम्बर यत्र-तत्र समाया था।
सर्वत्र अन्ध ही अन्धकार था; लुप्तमार्ग जब जन मानस घबराया था।
संत्रस्त विकल दिक-ज्ञान-शून्य जन-जन ने जब भीषण हाहाकार
मचाया था॥

— देकर प्रकाश तब दयानन्द ने बच्चे शिव की खोज करायी।
ओ३म् नाम सर्वोत्तम प्रभुका प्रथम समुल्लास में बात बतायी॥
विष्णु-विश्व-कुबेर-बन्धु-सरस्वती-श्री-लक्ष्मी-शक्ति।
शुद्ध-बुद्ध-मुक्ति-गणपति-ब्रह्म-आर्यमा-वसु-वृहस्पति॥
अनन्तधर्म उस प्रभु के असंख्य अनन्त ही नाम हैं॥

'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है। 'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है॥

— दूसरे और तीसरे में बाल-शिक्षा को बताया।
स्त्री और असवर्ण को अधिकार पढ़ने का दिलाया॥
गुण-कर्म-स्वभावशः वर्ण;गृहस्थाश्रम का मर्म सिखाया॥
पांचवे में संन्यासी-वानप्रस्थी की व्यवस्था का विधान है— ॥

'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है। 'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है॥

— राजधर्म का तथ्य सिखाया, ईश्वर का स्वरूप समझाया।
सृष्ट्युपित्त का ज्ञान कराया, ईश्वर को आधार बताया॥
विद्याऽविद्या का बोध कराया, मोक्ष बन्ध का भेद दिखाया॥
आचार-अनाचार भक्ष्याभक्ष्य का दसवें में किया गान है—॥

'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है। 'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है॥

— देश में परिव्याप्त मत-मतान्तरों को ध्वस्त करके
ग्यारहवें में शैव-शाक्त और वैष्णवों को त्रस्त करके
बारहवें में बोद्ध-जैनादि नास्तिकों को निरस्त करके
अन्त में बाईबल-कुरान के भीषण पाखण्डों से करता परित्राण है—

'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है। 'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है॥

— अन्त में परिशिष्ट में 'स्वमन्तव्यामन्तव्य में
सत्यार्थ का संक्षेपः सारगर्भि समाख्यान है—

'सत्यार्थ प्रकाश' महान् है। 'सत्यार्थ प्रकाश' महान् हैं॥

सूर्य प्रकाश स्नातक

सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध प्रहार

डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह, एम. ए. साहित्यालंकार कानपुर

★

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी। वे संस्कृत भाषा में ही भाषण दिया करते थे। कलकत्ते में संस्कृत में भाषण देने पर एक बंगाली संस्कृत के प्राध्यापक ने बंगभाषा में उसका अशुद्ध अनुवाद किया। इस पर वहाँ के संस्कृत के छात्रों ने प्रबल विरोध किया। उस समय श्री केशवचन्द्रसेन के प्रार्थना करने पर महर्षि दयानन्द जी ने भविष्य में आर्यभाषा (हिन्दी) में ही व्याख्यान देना स्वीकार कर लिया।

जिस समय महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने "सत्यार्थ प्रकाश" का आर्य भाषा में प्रणयन किया उस समय हिन्दी का पूर्णरूप से विकास नहीं हुआ था। वह भारतेन्दु युग था। अब तो हिन्दी का विकसित युग है। जिस समय "सत्यार्थ प्रकाश" का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ उस समय महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने समयाभाव से स्वयं प्रुफ संशोधन नहीं किया और सत्यार्थ प्रकाश' के लेखक श्री चन्द्रशेखर थे। महर्षिजी बोलते थे और लेखक लिपिबद्ध करता जाता था। महर्षि जी के साथ लेखकों ने विश्वास-घात करके सत्यार्थ प्रकाश' में प्रक्षेप कर दिया जिसे ज्ञात होने पर महर्षि जी ने द्वितीय संस्करण तैयार करके उसे प्रामाणिक बतलाया। यह कार्य उन्होंने अपने जीवन काल में ही किया।

विरोधियों ने प्रारम्भ से ही प्रहार किया।

(१) 'सत्यार्थ प्रकाश' के विरुद्ध राजनैतिक उद्देश्य से सन् १९०२ ई० में इस पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए विफल प्रयास एक पौराणिक हिन्दू सिन्धी संन्यासी श्री आलाराम सागर ने किया। उसने सत्यार्थ प्रकाश से कुछ उद्धरण लेकर अपनी एक पुस्तिका में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि आर्य समाज एक षड्यन्त्र-कारी और राजद्रोही संस्था है। इलाहाबाद के जिला न्यायाधीश मिस्टर पी० हैरिसन की अदालत में मामला चला। न्यायाधीश महोदय ने अपने निर्णय में स्वीकार किया कि जो उद्धरण श्री सन्यासी आलाराम ने दिए हैं उनमें राजद्रोह की गंध नहीं है। उनमें केवल इस बात पर दुःख प्रकट किया गया है कि कुछ धार्मिक तथा अन्य कारणों से भारतीय पराधीन हो गए हैं। न्यायाधीश महोदय ने अपने निर्णय में लिखा कि स्वामी दयानन्द के लेखों में सरकार के विरूद्ध हथियार उठाने अथवा विदेशी राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए प्रेरणा कहीं भी नहीं की गई है। उसमें तो केवल इस प्रकार के सुधारों के लिए प्रेरणा की गई है जिससे हिन्दू भविष्य में अपना शासन संभालने के योग्य हो सकें। अन्ततः मुकदमा खारिज हुआ और संन्यासी श्री आलाराम सागर से प्रतिभू (जमानत) मांगी गई।

(२) कुछ वर्षों के उपरान्त पार्लियामेन्ट के सदस्य सर वेलेण्टाइनचिरोल ने भी आर्य समाज तथा सत्यार्थ प्रकाश के विरूद्ध विष वमन किया और राजद्रोह की प्रेरणा देने वाला प्रकट किया। सर वेलेण्टाइन चिरोल के पार्लियामेंट के सदस्य तथा प्रमुख पत्रकार होने के कारण स्वाभाविकरुप में ही उनकी बात का वजन होना चाहिए था, किन्तु, उनके सभी प्रयत्न असफल रहे।

(३) सन् १९०९ ई० सत्यार्थ प्रकाश को लेकर 'पटियाला दरबार' (पंजाब) ने वहां के ७६ आर्य समाजियों के विरुद्ध षड्यंत्र का एक प्रबल मामला खड़ा किया। उसमें 'सत्यार्थ-प्रकाश' को राजद्रोह का प्रचार करने वाली पुस्तक कहा गया। यह प्रयत्न भी अरण्यरोदन ही रहा। अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने मुकदमें की पैरवी की थी।

(४) महमूद गाजी, जिसने शुद्ध होकर 'नखल-ए-इस्लाम' 'तरक-ए-इस्लाम' और 'तहज़ीव उल इस्लाम' जैसी भयंकर पुस्तकें इस्लाम और उसके प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब के विरूद्ध लिखीं। उसी ने अपनी पत्रिका 'हनीफ' के मई १९२५ ई० के अङ्क में सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध प्रतिबंध के लिए ध्वनि बुलन्द की। पहले तो डॉ० सैफउद्दीन किचलू ने उसकी पीठ ठोकी, पर एक ही सप्ताह के पश्चात् 'तन्जीम' पत्रिका के ९ मई सन् १९२५ ई० के अंक में उसकी भूल सुधार करके प्रतिबन्ध की मांग वापस ले ली। मौ० मुहम्मद अली एम. ए. एल. एल. बी. कादियानी ने अपने पत्र "हमदर्द" के ९ मई सन् १९२५ ई० के अंक में महमूद-गाज़ी के लेख की धज्जियां उड़ाकर मुसलमानों के उत्तेजित भावों को शान्त कर दिया।

(५) बिहार कौन्सिल के एक मुसलमान सदस्य ने एक बिल सत्यार्थ-प्रकाश' के चतुर्दश समुल्लास' पर प्रतिबन्ध के लिए उपस्थित करना चाहा। इस पर आर्य जगत् में भारी आन्दोलन हुआ। विरोधी सभायें हुई। प्रस्ताव स्वीकार हुए। समाचार पत्रों ने विरोध किया। अन्त में बिहार के राज्यपाल को विवश होकर यह बिल एजेंडा से काट देना पड़ा और कौंसिल में प्रस्तुत न होने दिया। अतः यह आन्दोलन वहीं समाप्त हो गया।

(६) सिन्ध के गृहमंत्री मिस्टर गजदर ने धर्मान्धता के रंग में आकर २६ अक्टूबर १९४४ को डिफेन्स ऑफ इंडिया रुल्स की धारा ४१ के आधीन यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि—"अमन आमान और तहफ्फज़ कानून के लिए सिन्ध सरकार स्वामी दयानन्द सरस्वती के तहरीर करदा "सत्यार्थ प्रकाश" नामी किताब की कोई कापी तब तक शाया न की जावे, जब तक कि उस में से चौदहवां बाब न निकाल दिया जावे।" इस आदेश के निकालते समय मिस्टर गजदर ने वक्तव्य दिया कि—"यह प्रतिबन्ध लगाकर मैंने इस्लाम की सेवा की है और ऐसा करना आवश्यक हो गया था, क्योंकि कुछ लोग १४ वें बाब की हजारों प्रतियां छापकर मुसलिम जनता में बिना मूल्य वितरण करना चाहते थे।"

इससे आर्यजनता में क्रोध और अशान्ति की लहर दौड़ गई। सिन्ध सरकार ने यद्यपि ८ जुलाई १९४३ को यह घोषित कर दिया था कि वह सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करना चाहती, किन्तु सुरक्षा व शान्ति की आड़ में सिन्ध सरकार ने अपने प्रान्त में सत्यार्थ प्रकाश के १४ वें समुल्लास के प्रकाशन व मुद्रण पर प्रतिबंध लगा दिया। ७ नवम्बर १९४४ को भाई परमानन्द जी एम. ए. ने केन्द्रीयधारा सभा में उस सम्बन्ध में काम रोको प्रस्ताव भी उपस्थित किया।

प्रधानमंत्री का यह नोट १८ जनवरी १९४७ के "सिन्ध आबजर्वर' में छपा था। १९ जनवरी ४७ को उसी पत्र में एक दूसरा नोट छपा जिससे विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ कि यह बात कही गई कि सिन्ध सरकार ने हिदायत जारी कर दी कि पुलिस सत्यार्थ प्रकाश के लिए न कहीं तलाशी ले और न उसे जब्त करे और यदि किसी के पास वह हो तो उसे भी यों ही रहने दिया जाय।

अतः सिन्ध सरकार सत्यार्थ प्रकाश की जब्ती के आदेश का जहां तक सम्बन्ध है क्रियात्मक रूप नहीं देना चाहती।

महात्मा नारायण स्वामी जी ने सिन्ध में सत्याग्रह किया पर सरकार की ओर से कोई कार्यवाही नहीं की गई। महात्माजी ने घोषणा करते हुए कहा कि—वस्तुतः व्यवहार में 'सत्यार्थ प्रकाश' पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा।

जिस समय सिन्ध के मुस्लिम मंत्रिमण्डल की सम्मति से २६ जून १९४३ ई० में सिन्ध सरकार ने एक विज्ञप्ति द्वारा प्रकट किया कि सरकार सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने का विचार कर रही है।

इस विज्ञप्ति पर आर्यों ने ही नहीं वरन् सनातनियों ने भी इसके विरोध में अपनी ध्वनि बुलन्द की। प्रतिष्ठित व प्राचीन मासिक पत्रिका "सरस्वती" प्रयाग, अगस्त १९४३ ई. पृष्ठ ४१९ में उसके सम्पादक पौराणिक पं० देवीदत्त जी शुक्ल ने यह लिखा : —

"पाकिस्तानी अर्थात् मुस्लिम लीगी शासन की कैसी रुप रेखा होगी इसका कुछ-कुछ पता उन प्रान्तों की शासन की गतिविधि से मिलने लगा है। जहाँ इस समय मुस्लिम लीगी मंत्रिमंडल सरकारी सहायता से फल फूल रहे हैं। इस सम्बन्ध में सिन्ध की लीगी सरकार अधिक साहस से काम ले रही है और हाल में सत्यार्थ प्रकाश के सिन्धी अनुवाद पर प्रतिबन्ध लगाने का साहस दिखला कर उसने अपनी इस इमानदारी का ही परिचय दिया है कि अपना पूर्णप्रभुत्व हो जाने पर वह सम्प्रदायवाद को कहाँ तक महत्व देगी। यह सत्य है कि सम्प्रदायवाद 'सत्यार्थ प्रकाश' के तेज को नहीं सह सकते हैं, परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि उस महान् तेजस्वी पवित्र ग्रन्थ के आगे सम्प्रदायवाद भी नहीं ठहर सकता। यह पुनीत ग्रन्थ वर्तमान युग के उस महर्षि की रचना है, जो एकमात्र सत्य का उपासक था और जिसके दयालु हृदय ने ईशवाणी का साक्षात्कार किया था। ऐसी पवित्र आत्मा की 'सत्यवाणी' के दबाने का जो प्रयत्न सिन्ध के मुस्लिम लीगी तथा अन्य लोग करने जा रहे हैं वह और कुछ नहीं, वस्तुतः उसका और भी अधिक व्यापक प्रचार करने का नया साधन जुटा रहे हैं, क्योंकि सत्य को जब आज तक कोई भी महान् से महान् शक्ति नहीं दबा सकी तब सिन्ध की वर्तमान सरकार की क्या हस्ती है कि वह 'सत्यार्थ प्रकाश' का नाम शेष कर सके। उसे समझना चाहिए कि सत्यार्थ प्रकाश की रचना उसके प्रणेता ने किसी धर्म की निन्दा करने तथा किसी धर्म के अनुयायियों के दिल को चोट पहुंचाने केलिए नहीं की थी। ......

'सत्यार्थ-प्रकाश' पर साहित्यक प्रहार

कुछ लोगों ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की सत्यता को सहन न करते हुए अपनी लेखनियों द्वारा साहित्यिक प्रहार भी किया, जिनका आर्यजगत् के विद्वानों ने समुचित उत्तर दिया।

पौराणिक पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र 'विद्यावारिधि' ने "दयानन्द-तिमिर भास्कर' ग्रन्थ लिखा और ११ समुल्लासों का प्रतिवाद किया। आर्जजगत् की ओर से सामवेद भास्कार पं. तुलसीरामजी स्वामी, मेरठ ने "दिवाकर-प्रकाश" द्वारा मिश्र जी को सप्रमाण व तर्कयुक्त उत्तर दिया और मिश्र जी की लेखनी बन्द हो गई। मिश्र

जी के अनुज पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने "धर्म दिवाकर में तीन समुल्लासों का प्रत्युत्तर दिया जिसका पुनः प्रतिवाद पं० तुलसीराम जी स्वामी ने "दिवाकर प्रकाश" पुस्तक द्वारा किया। दोनों पुस्तकें स्वामी प्रेस, मेरठ से प्रकाशित हुईं।

पं० कालूराम शास्त्री, अमरौधा ने "सत्यार्थ प्रकाश का छीछालेदड़" पुस्तिका लिखी । इसका मुंहतोड़ व तर्कपूर्ण उत्तर पं. रामदुलारे लाल आर्य ने "सत्यार्थ प्रकाश का चमत्कार" नामक ८४ पृष्ठ की पुस्तक द्वारा दिया जो सन् १९३० ई० में आर्य तर्कशालिनी सभा, चावड़ी, बाजार, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुई थी।

पौराणिक पं. माधवाचार्य शास्त्री के पुत्र पं०प्रेमाचार्य शास्त्री ने "सत्यार्थ प्रकाश का छीछालेदड़" नामक पुस्तिका लिखी जिसका मुंहतोड़ उत्तर पं० श्रीराम आर्य ने "सत्यार्थ प्रकाश की छीछालेदड़ का उत्तर' नामक पुस्तक द्वारा दिया जो वैदिक साहित्य प्रकाशन कासगंज द्वारा ; काशित हुई। श्री ज्ञानचन्द आर्य द्वारा लिखित "सत्यनिर्णय" ग्रन्थ सन्१९३३ ई० में सार्वदेशिक सभा 'दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। इसमें महात्मा गांधी द्वारा आर्य समाज व सत्यार्थ-प्रकाश पर किए गए आक्षेपों का निराकरण है।

श्री आला राम सागर संन्यासी ने "दयानन्द मिथ्यात्व प्रकाश" नामक पुस्तक लिखकर "सत्यार्थ प्रकाश" पर आक्षेप किया था जिसका सप्रमाण व युक्तियुक्त उत्तर पं. रुद्रदत्त जी शर्मा सम्पादकाचार्य ने "आलाहृदयान्धकार मार्तण्ड" नामक ७० पृष्ठ की पुस्तक द्वारा दिया था जो सन् १९०२ई० में भारत रत्न यन्त्रालय पटना सिटी (विहार) में मुद्रित करके लेखक ने प्रकाशित किया था।

अभी ऐसी पुस्तकें विरोधियों द्वारा 'सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध लिखी गई हैं जिनके उत्तर आर्य जगत् व सार्वदेशिक सभा को देने हैं।

(१) मुरादाबाद निवासी मुंशी जगन्नाथ दास कृत "सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा" पृष्ठ संख्या ७२ सन् १९२९ ई० में सातवीं बार ब्रह्म प्रेस, इटावा से प्रकाशित हुई थी । अभी भी प्राप्य है ।

(२) पं. रुलियाराम कालिया, जालन्धरकृत "वास्तविक स्वतन्त्रता अर्थात् असली आजादी "पृष्ठ सं. ३०९, वैद्य, कविराज पं. विद्यारत्न कालिया 'गेट माई हीरा, जालन्धर नगर (पजाव) से प्राप्य (सं २००८वि. में प्रकाशित)

(३) लाला भवानी प्रसाद नम्बरदार देवरी कलां (सागर) कृत "भास्कराभास निवारण" पृष्ठ११६, सन् १९१४ ई० में ब्रह्म प्रेस, इटावा में मुद्रित, द्वितीयबार। यह पं. तुलसी राम कृत "भास्करा प्रकाश" की आलोचना है।

(४) कवि रत्न पं० अखिलानन्द शर्मा, अनूपशहर कृत "सत्यार्थ प्रकाशालोचन "पृष्ठ सं० २४३, लेखक द्वारा प्रकाशित।

(५) कविरत्न पं. अखिलानन्द जी शर्मा कृत ' सत्यार्थ प्रकाश में अस्पृश्यता विवेचन" पृष्ठ सं. ४५ सन् १९३३ई. में ब्रह्म प्रेस इटावा में मुद्रित व लेखक द्वारा प्रकाशित।

(६) ला०भवानी प्रसाद नम्बरदार कृत "दयानन्दमत विद्रावण अर्थात् सत्यार्थ प्रकाश पर शङ्का प्रवाह" पृष्ठ सं. १०८, ब्रह्म प्रेस, इटावा में मुद्रित व प्रकाशित सन् १९२८ई.।

(७) पं. कालूराम शास्त्री कृत "धर्म प्रकाश" प्रथम' द्वितीय, पञ्चम व षष्ठ समुल्लास (पं. तुलसीराम स्वामी कृत "भास्कर प्रकाश" का उत्तर) पं. रामनारायण दीक्षित, ग्रा० पो०:- अमरौधा जिला कानपुर से प्राप्य।

(८) जैनियों कि ओर से "परमार्थ प्रकाश" (अर्थात् सत्यार्थ प्रकाश की आलोचना)- ज्ञानशक्ति प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।

(९) श्री अजीतकुमार जैन शास्त्री कृत "सत्यार्थ-दर्पण" पृष्ठ संख्या २७८, सन्१९४९ ई. में मंत्री साहित्य विभाग, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा द्वारा प्रकाशित, (सत्यार्थ प्रकाश के १२ वें समुल्लास पर विचार)।

(१०) पं. कालूराम शास्त्री कृत "वैदिक सत्यार्थ प्रकाश उपनाम आर्य समाज की अन्त्येष्टि" पृष्ठ सं. ४१७ (श्री रामनारायण दीक्षित, अमरौधा, कानपुर से प्राप्य)

(११) श्री अबू मुहम्मद इमामुद्दीन रामनगरी कृत "सत्यार्थ प्रकाश का असत्यार्थ प्रकाश" पृष्ठ सं. ९०, इस्लामी साहित्य सदन राम नगर (वाराणसी) उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित । मेरे मित्र आचार्य डा० श्री राम आर्य, कासगंज (एटा) उ० प्र० ने इसका समुचित उत्तर दिया है जिसे मुद्रित करवाने की व्यवस्था कर रहे हैं।

सत्यार्थ प्रकाश का जादू

—डा० श्री राम आर्य

★

ईश्वरीय ज्ञान वेदों के पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश संसार के धार्मिक साहित्य में सर्वाधिक प्रभावशाली एवं श्रेष्ठ ग्रन्थ है। यह तर्क विज्ञान, सृष्टिनियम के अनुकूल एवं बुद्धि-गम्य ग्रन्थ है। प्रत्येक प्रकार के अन्ध विश्वासों, अवैदिक मिथ्या मान्यताओं का निराकरण करने में बुद्धि को सक्षम बना देता है। सहस्रों वर्षों से मत-मतान्तरों द्वारा फैलाये गये काल्पनिक विश्वासों, ईश्वर, जीव, प्रकृति, स्वर्ग, नरक, देवी देवताओं, ज्योतिष के फलितों, अवैज्ञानिक परोक्ष विषयों की कल्पनाओं को ध्वस्त करके इसने सभी मत वालों के मजहबी ग्रन्थों की स्थिति को हास्यास्पद बना दिया है। आज का विद्वान् सत्यार्थप्रकाश के प्रकाश के ही कारण अवतारों-पैगम्बरों-भूतप्रेतों, देवी-देवताओं के अस्तित्व को मानने को तैयार नहीं है। इसके विलक्षण तर्क व प्रमाण, समीक्षा की हृदय स्पर्शी शैली इतनी युक्तियुक्त है कि किसी मत को मानने वाला बड़े से बड़ा विद्वान् उसके समक्ष सर झुकाने को विवश हो जाता है। इसी का प्रभाव है कि आज कुरान और बाइबल के अर्थ बदले जा रहे हैं। उनके संशोधन होने लगे हैं। अमरीका में तो बाइबल की कटी छटी संक्षिप्त बाइबल भी छप चुकी है जिसे पोप का भी आशीर्वाद प्राप्त हो चुका है। सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें, बारहवें-तेरहवें तथा चौदहवें समुल्लासों का उत्तर किसी पंडित, पादरी या मौलवी से आज तक नहीं बन सका है। हिन्दु धर्म में पुराणों की मान्यता समाप्त हो चुकी है। महाभारत तथा पुराणों के संशोधित संस्करण गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित किये जा रहे हैं, जिन अश्लील स्थलों पर हम लोग पुराणों पर प्रहार करते थे, वे आज उन में देखने को नहीं मिलते हैं। यह सब सत्यार्थ प्रकाश का ही चमत्कार है कि भागवत में अब अठारह हजार श्लोकों के स्थान पर केवल १४१८० श्लोक छापे जा रहे हैं। सत्यार्थ प्रकाश के ही प्रभाव के कारण डा० सम्पूर्णानन्द जी को पुराणों के संशोधन के लिये एक समिति का भी निर्माण करना पड़ा था, जो सम्भवतः अपना कार्य कर रही है।

सत्यार्थ प्रकाश वैदिक धर्म के सभी ग्रन्थों का सार प्रस्तुत करता है। इसे एक बार आद्योपान्त ध्यान पूर्वक पढ़ लेने पर कोई व्यक्ति किसी के जाल में नहीं फंस सकता है। ऐसा कोई प्रश्न वा सिद्धान्त नहीं है, जिस पर सत्यार्थ प्रकाश में प्रकाश न डाला गया हो। ऐसा कोई अन्धविश्वास नहीं है जिस का उसमें निराकरण न किया गया हो। ऐसा कोई दार्शनिक विषय नहीं है जिसे सुगमतम रुप में उसमें न समझाया गया हो। वैदिक धर्म के सभी मन्तव्यों की, वेदादि ग्रन्थों के प्रमाणों से तर्क के आधार पर प्रश्नोत्तररुप में विशद् व्याख्यायें उसमें मिलती हैं, जो कहीं भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं। पं० गुरुदत्त विज्ञानाचार्य ने इसी लिये कहा था कि १८ बार सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने पर सदैव उसमें से नवीन २ मार्गदर्शन वा ज्ञान उनको प्राप्त होते रहे थे। धार्मिक क्षेत्र हो या सामाजिक, शिक्षा का क्षेत्र हो या राजनैतिक सभी में उससे मार्ग दर्शन मिलता है। आज देश का कोई भी ऐसा विद्वान् वा राजनेता नहीं है जिसने सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर उससे दिशा निर्देश न प्राप्त किया हो।

मध्यकाल में हिन्दू धर्म, सिद्धान्तों की दृष्टि से खिचड़ी बन चुका था। कोई निश्चित मान्यतायें वैदिक सिद्धान्तों पर नहीं थीं। वेद के नाम पर हर विद्वान् अपना नया मत चलाने में लगा था। ऋषि ने द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि के स्थान पर त्रैतवाद के वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन 'द्वासुपर्ण सयुजा सखायों' वेद मंत्र के द्वारा करके अनेक सैद्धान्तिक भ्रमों का उच्छेद कर दिया। अद्वैत-वाद की मान्यता का खण्डन उन्हीं के मकड़ी और जाले के दृष्टान्त से तथा कुम्भ-कुम्भकार एवं मट्टी के निमित्त एवं उपादान के कार्य से पृथक सत्ता होने से कर दिया।

मोक्ष में जीव-ईश्वर के सम्बन्ध का एवं जीव के पृथक, अस्तित्व बनाये रखने का समर्थन लोहे के अग्नि में पड़कर अग्निमय होने पर भी स्वतन्त्र अस्तित्व धारण करने के दृष्टान्त से किया। ईश्वर के सर्वव्यापकत्व का समर्थन 'ईशावास्यमिदं' यजुर्वेद के मंत्र द्वारा किया। मोक्ष से जीव के पुनरावर्तन का प्रतिपादन 'ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे' इस उपनिषद् वाक्य से करके जीव के पुनः लौटने की अवधि भी परान्त काल पर्यन्त बता दी, और इस के समर्थन में ऋग्वेद के "कस्यनूनं कतमस्यामृतानां"

तथा "अग्नेर्वयं प्रथम स्यामृतानां" मंत्रों की साक्षी भी उद्धृत कर दी। सृष्टि क्रम को प्रवाह से अनादि वेद के सूर्याचन्द्मसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्' मंत्र द्वारा बता कर प्रथमवार ही सृष्टि उत्पत्ति मानने वालों की भ्रान्ति का निराकरण किया है। ईश्वर के सगुण व निर्गुण होने के विवाद का अन्त उसे दोनों ही प्रकार का प्रतिपादित करके कर दिया। ऋषि ने लिखा है कि परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान-बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रुपादि जड़ के गुण तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है। अभाव से भाव की उत्पत्ति, बिना उपादान कारण के केवल ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति अर्थात् ब्रह्म को ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानने वालों का मुंह ऋषि ने प्रकृति (उपादान कारण) की नित्यता का वेद से 'द्वासुपर्णा' मंत्र प्रतिपादन करके बन्द कर दिया। वेदो के ईश्वरीय ज्ञान होने का समर्थन यस्माद्वयोअपातक्षन' वेद मंत्र द्वारा किया तथा उनके चार ऋषियों के अन्तःकरण से प्रकाश होने के पक्ष में शतपथ के 'अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः, मंत्र को उपस्थित कर दिया। ऋषि ने अग्नि वायु आदित्य एवं अंगिरा इन चारों को जीव विशेष (ऋषि) घोषित किया है और इस प्रकार ब्रह्मा से वेद उत्पन्न होने तथा व्यास द्वारा उनके चार विभाग किये जाने की पौराणिक मिथ्या मान्यता का निराकरण सप्रमाण कर दिया है। वेदों को प्राप्त करने वाले चार ऋषियों के उक्त नाम उनकी उपाधियां होती हैं, जो प्रत्येक सृष्टि में वेद प्राप्तकर्त्ताओं को मिलती हैं। वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने के पक्ष में ऋषि की युक्तियां सप्तम समुल्लास में देखने योग्य हैं। ईश्वर का स्वरूप एवं निराकारत्व का समर्थन वेद के 'सपर्यगाच्छुक्रमकायम्' यजुः के मंत्र द्वारा करके उसे सूक्ष्म स्थूल कारण तीनों शरीरों से रहित निराकर घोषित किया है। प्रथम समुल्लास में ईश्वर के १०८ नामों की व्याख्या करके ऋषि ने बताया है कि भूल से लोगों ने ईश्वर के नामों को न समझ कर उन्हीं नामों से अनेक पृथक् पृथक् देवी देवताओं की कल्पना करके धोखा खाया है। ये नाम ईश्वर के ही गुणकर्मानुसार उसी के हैं। पृथ्वी की भ्रमणशीलता के पक्ष में वेद के 'आयं गौः' वेद मंत्र को प्रस्तुत किया है तथा चन्द्रमा, सूर्य से प्रकाश लेता है, स्वतः प्रकाशमान् नहीं है, उस वैज्ञानिक सिद्धान्त को ऋषि ने "दिवि सोमो अधिश्रिता" अथर्ववेद के मंत्र से वेद में दिखा दिया है। पृथ्वी गाय-सर्प या मछली के ऊपर स्थित है, इस मान्यता का खण्डन 'सदाधार पृथ्वीद्यामुतेमाम्' वेद मंत्र से पृथ्वी आदि समस्त विश्व का एक मात्र धारक ईश्वर को प्रकट करके किया है। आर्य भारत में बाहर से नहीं आये और न समस्त भारतीय साहित्य में इस प्रकार का कोई प्रमाण है इस बात का समर्थन व घोषणा सर्वप्रथम ऋषि ने ही की है तथा सर्वप्रथम मानव सृष्टि "तिब्बत" पर हुई थी यह दावा भी सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि ने ही किया था, जिससे भारतीयों में अपने को विदेशी मानने का भ्रमदूर होकर भारतीय होने का गर्व प्राप्त हुआ है। स्वर्ग व नरक को स्थान विशेष पर लोक मानने की विश्वव्यापी भ्रान्त मान्यता का खण्डन स्वर्ग-सुख, नरक-दुःख यह जीवन की स्थितियों का नाम है, ऐसी घोषणा करके किया है, जिसे अब सभी मतों के विद्वान् स्वीकार करने पर विवश हुए हैं। आर्य-श्रेष्ठ व दस्यु-दुष्ठ जन गुणों के आधार पर माने हैं, जाति वाचक नहीं।

सत्यार्थ प्रकाश विश्व का अद्भुत ग्रंथ है जिसमें हमें सभी वैदिक आदर्शों का दर्शन, सभी शंकाओं का समाधान मिल जाता है। वैदिक वर्ण-व्यवस्था तथा ब्रह्मचर्य-गृहस्थ वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रमों के कर्त्तव्यों का विशेष निदेश मिलता है। केवल विरक्त विद्वान्-तपस्वी ब्राह्मण को ही संन्यास लेने का अधिकारी ऋषि ने माना है। सभी को उसका अधिकार नहीं दिया है। नियोग की प्राचीन वैदिक परम्परा को वेद के 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिम्' मंत्र से आपत्तिकालीन व्यवस्था के रुप में ऋषि ने माना है। आचार-अनाचार खाद्याखाद्य विषयों का विस्तृत विवेचन सत्यार्थ प्रकाश में मिलता है। स्वदेशी राज्य श्रेष्ठतम विदेशी राज्य से उत्तम होता है, यह घोषणा अंग्रेजी शिकन्जे में जकड़े भारत में सत्यार्थ प्रकाश ने ही की थी। स्वराज्य-सुराज्य एवं स्वदेशी की प्रेरणा सर्वप्रथम सत्यार्थप्रकाश से ही देश को मिली थी। छठे समुल्लास से वैदिक राष्ट्र के स्वरुप का दर्शन देशवासियों को मिला है। सत्यार्थप्रकाश पूर्वार्ध के दश समुल्लासों में ऋषि ने अमृत की वर्षा की है, ज्ञान का सागर भर दिया है जिसे देखकर बड़े से बड़े विद्वान को ऋषि के अगाध ज्ञान पर मुग्ध हो जाना पड़ता है।

उत्तरार्ध के चार समुल्लासों में ऋषि ने जो भारतीय एवं अभारतीय (ईसाई-मुसलमानों के मान्यग्रन्थ) बाईबल व कुरान की समालोचना करके उनका सत्यस्वरुप सामने रखा है, उसी का प्रभाव है कि आज उसे पढ़ लेने वाले के सक्षम कोई की मतवादी मुंह खोलने का साहस नहीं रखता है। कोई भी विधर्मी आज हिन्दू धर्म पर आक्रमण करने में सक्षम नहीं रहा है। सभी को अपनी अपनी दुर्बलतायें छिपाने वा दूर करने की चिन्ता लगी हुई है, और वे सुधार करके अपने मतों को बुद्धि के अनुकूल बनाने मे लगे हुए हैं तथा अपने मान्य ग्रंस्थों में काट छांट करने में जुटे हुये हैं।

सभी की तर्क बुद्धि जागृत हुई है और सभी में सत्यासत्य को परखने की बुद्धि पैदा हो गई है जिसका श्रेय सत्यार्थ प्रकाश को ही है।

कुरान शरीफ़ के खुदाई होने पर सत्यार्थ प्रकाश कुरान की सर्व प्रथम सूरत की प्रथम आयत 'बइस्मअल्लाहरहमानुरहीम' शुरु करता हूं साथ नाम अल्लाह के जो रहीमों का भी रहीम है इस पर मौलिक प्रहार करके इसके मनुष्यकृत होने को यह कहकर स्पष्ट किया है कि अल्लाह के नाम को लेकर प्रारम्भ करने वाला अल्लाह न होकर कोई अन्य व्यक्ति था यह स्पष्ट है। इसका उत्तर आज तक कोई मौलवी नही दे सका है। इस्लाम की जड़ कुरान जब खुदाई नही रहा तो इसका मूलाधार ही समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार बाईबल की गल्पों का परदा-फाश करके सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि ने ईसाईयत की नींव को हिलाकर रख दिया है। जो ईसाई प्रचारक पानी पी-पी कर हिन्दू धर्म पर आक्रमण किया करते थे, सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर इनके मुंहपर ताले लग चुके हैं और जिस ईसा को यहुदियों ने सूली पर चढ़ाकर मार दिया था, उसे खुदा का बेटा हिन्दुओं को बताना वे भूल चुके हैं। अपने अन्धभक्त ईसाईयों को चाहे जैसे वे बहकाते रहें।

कुरान शरीफ़ में सर्व प्रथम सूरत सूरते फ़ातिहा है, जिसका उपयोग मुस्लिम संसार सर्वत्र करता है, नमाज में भी इसीका प्रयोग होता है, स्वयं कुरान में भी उसकी प्रशंसा की गई है। किन्तु यह आयत वेद के 'अग्ने नय सुपथा' वेद मंत्र के भावार्थ के आधार पर बनाई गई है, जिसमें आयतें बनाते समय एक गलत बात लेखक ने 'मालिकेयोमिद्दीन' शब्द जोड़कर उसे विकृत कर दिया है। मालिके-यौमिद्दीन' का अर्थ प्रलय (कयामत) के दिन का मालिक खुदा है, जिस दिन सभी के कर्मों के फैसले की कचहरी लगेगी और खुदा एक तख्त पर बैठेगा, वकील लोग व मुल्जिमान सामने पेश होंगे। किताबें न्याय के लिए रखी जावेगी। गवाहियां पेश होंगी, कर्मपत्र मुल्जिमों को दिये जावेंगे और खुदा न्यायधीश बनकर लोगों को जन्नत वा दोजख में भेजेगा। इस वाक्य को यदि इसमें से निकाल दिया जावे तो सूरे फातिहा उक्त वेदमंत्र के अनुकूल बन जाती है।

कुरान सूरेबकर की प्रथम आयत विस्मिल्लाह रहमानुरहीम' में बाद में 'अलिफ़ लाम मीम' तीन अक्षर और लिखें मिलते हैं जिनके बारे में कुरान भाष्यकारों ने लिखा है कि इनका अर्थ केवल खुदा ही जानता है। परन्तु इनका अर्थ अलिफ के साथ लाम अक्षर वाउ के रुप में मिलता है, जिससे "ओ" बनता है और अन्त मे मीम मिलकर 'ओम्' बन जाता है जिससे प्रकट होता है कि कुरान बनाने वाले ने 'ओम्' नाम वाले अत्यन्त दयालु परमेश्वर का स्मरण करके कुरान लिखना प्रारम्भ किया था। हमारे देश के ओम् नाम से ईश्वर को याद करने की बात को मुसलमान कैसे स्वीकार कर सकते हैं, चाहे कुरान से यह बात साबित ही क्यों न हो।

इस प्रकार हमने देखा कि ऋषि के सत्यार्थ प्रकाश द्वारा जो प्रकाश फैला है वह संसार व्यापी है। सभी सम्प्रदायों में उसी के कारण सुधार की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ है। प्रत्येक देश व समाज पर सत्यार्थ प्रकाश का व्यापक क्रान्तिकारी असर हुआ है। वैदिक सिद्धान्तों के व्यापक प्रचार का आज हम सम्पूर्ण श्रेय सत्यार्थप्रकाश को ही दे सकते हैं। ●
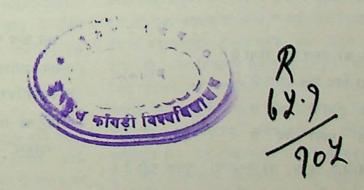
सत्यार्थ प्रकाश की दीप्ति

सत्यार्थ-रवि की सुन्दर किरणें चमक रही हैं।
विद्वत् मण्डल रूप गगन में दमक रही हैं॥

भव्य रूप जब भूल चुका था भारत
मनुज डोलता कुण्ठ-कुण्ठ हो आरत
जब द्योतवान् भूमि आवृत थी तम से
एक दिव्य शक्ति ने काटे सारे जाल निगम से

उसी शक्ति की दिव्य चाँदनी छिटक रही है।
सत्यार्थ रवि की सुन्दर किरणें चमक रही हैं॥

महाविद्वत्ता भारत की जब लुप्त हो गई
आर्य जाति की गौरव गाथा सुप्त हो गई
आसुरी शक्ति ने जब देखो उत्पात मचाया
विद्या का शूल ले हाथ ऋषि तब आया
अब देखो पल-पल खली शक्तियाँ सिसक रही हैं।
सत्यार्थ रवि की सुन्दर किरणें चमक रही हैं॥

जिसने जाति के वीरों को अमृत दान दिया है
उसी ऋषि ने देखो तो विष पान किया है
यह सत्य-अर्थ-प्रकाश हुआ है जब से
आर्य जाति ने जीवन पाया तब से
क्षण-क्षण ऋषि की पुण्यात्मा पुलक रही है।
सत्यार्थ रवि की सुन्दर किरणें चमक रही हैं॥

— वेद प्रकाश विद्यार्थी
(११४ चाहबाई, बरेली—

तब आये थे ऋषि दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश बनाया था

चहुं ओर अविद्या अन्धकार, अत्याचारों की विकट मार।
आपत्ति अपरम्पार तथा तलवार धार का धुन्धकार !
करें चीत्कार अबलाऐं नार, गउओं के रक्त की बहे धार !
ऋषि मुनियों के पथ को विसार, पाखण्ड पनपते द्वार-द्वार !
पद दलित मान स्खलित देश भारत का पग-पग पाया था ! १

तज वर्ण आश्रम का विधान, गायत्री गीता ज्ञान ध्यान !
श्रुति, शास्त्र, स्मृति दया दान का कहां मान गौरव गुमान !
पाषाणों को भगवान मान, यम-नियम रहित नित नित्यहान
उत्थान कहाँ सोपान स्वर्ग के, ध्वस्त त्रस्त भारत महान् !
अज्ञान असुर के उर छेदन को शिव को दण्ड उठाया था ! २

पग-पग पर भारी बिछे जाल ईसा चेलों की चपल-चाल !
कहीं यवनों की कृपाण ढाल अग्नि में डाल जल में उबाल !
सब वृद्ध-बाल कितने विहाल अदि की कुचाल से बुरा हाल !
जंजाल कठिन अति कलु काल भूपाल करे न प्रतिपाल !
ऋषिवर करते न देख भाल हो जाना सभी सफाया था ! ३

छल छन्द मन्द नित लगा फन्द दिन रातद्वन्द लख दयानन्द
तब क्रान्तिदूत अवधूत सन्त भारत-सपूत आनन्द कन्द !
उर में विराग दिन रात जाग चमके चिराग बन सूर्य चन्द !
मिट गई भ्रान्ति कर दई क्रान्ति मिल गई शान्ति सच्चिदानन्द !
"व्याकुल" कवि वेदसुधा सागर को ऋषि बरसाने आया
था ! ४

तब आए थे ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश बनाया था।

— प्रकाशवीर शर्मा 'व्याकुल' दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

सत्यार्थ प्रकाश ही क्यों

—शास्त्रार्थ महारथी पं० ओम्प्रकाश शास्त्री, खतौली

★

[महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपने इस अमर ग्रन्थ का नाम "सत्यार्थ प्रकाश" ही क्यों रखा ? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। इसी प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर इस लेख में दिया जा रहा है। आशा है, पाठकगण इससे लाभान्वित, होंगे।]

महर्षि ने अपने इस ग्रन्थ में जिन-जिन सिद्धान्तों तथा पारिभाषिक शब्दों का स्पष्ट तथा विस्तृत विवेचन किया है, वह सिद्धान्त तथा शब्द, कोई नये नहीं थे। अन्तर इतना था, कि मध्य काल में उनके अर्थ बदल गये थे। ईश्वर, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, तथा स्वर्ग-नरक आदि शब्द दीर्घकाल से परम्पराओं में बोले तथा सुने जाते थे। परन्तु इनके वास्तविक स्वरुप, और उनके सत्य अर्थो को संसार भूल चुका था। अज्ञान तथा अविद्या के कारण इनके प्रचलित असत्य अर्थों से संसार जहाँ अन्धकार में भटक रहा था, वहां ही इसके कारण अनेक सामाजिक दोष परम्परा रुप में मानव समाज को विनाश की ओर ले जा रहे थे। एक ईश्वर के स्थान पर अनेक ईश्वर, एक सार्वभौम वैदिक धर्म के स्थान पर विभिन्न मतमतान्तर, पारस्परिक संघर्षो का कारण बने हुए थे। महर्षि ने अपनी दूरदर्शिता से चारों ओर फैले, इस अविद्या अन्धकार को देखा। उन्होने अनुभव किया कि इस अज्ञान-अविद्या-अन्धकार में भटकते, विश्वमानवों को सत्य-मार्ग पर लाने के लिये प्रकाश की आवश्यकता है। और यह प्रकाश उपर्युक्त सिद्धान्तों तथा पारिभाषिक शब्दों के सत्य अर्थों को प्रकाशित किये बिना, प्राप्त नहीं हो सकता। अतः उन्होंने सत्यअर्थो का प्रकाश करने वाले अपने इस ग्रन्थ का नाम "सत्यार्थ प्रकाश" रखा।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, कि ईश्वर आदि शब्द हमारे लिये कोई नये नहीं थे ! परन्तु वैदिक मान्यता के विरुद्ध, उनके अर्थ तथा स्वरुप बदल चुके थे। एक सार्व भौम ईश्वर के स्थान पर प्रत्येक सम्प्रदाय, अपनी-अपनी कल्पना के आधार पर ईश्वर का वर्णन करता, और उसे मानता था। कोई उसे सातवें, कोई चौथे आसमान पर मानता था कोई काशी में तो कोई काबे में उसके दर्शनों को भागता था। इसके अतिरिक्त विभिन्न ईश्वर-पूजा के मन्दिर-मस्जिद आदि स्थान अलग-अलग मतों में माने जाते थे। जिनके परिणामस्वरुप एक सार्वभौम ईश्वर के स्थान पर विभिन्न रूपों और विभिन्न स्थानों में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया जा रहा था। इस प्रकार ईश्वर एक शरीर-धारी, सीमित व्यक्तित्व के रुप में समझा जा रहा था। इसके अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओं की कल्पितप्रतिमायें, नदियाँ, वृक्ष तथा सूर्य, चन्द्रमा आदि नक्षत्र उपास्य देवों रुप में स्वीकार किये जा चुके थे इस स्थिति में ईश्वर के सत्य स्वरुप और उसके सत्य अर्थ के प्रकाशार्थ महर्षि ने "सत्यार्थप्रकाश" के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के सही स्वरुप का वर्णन किया साथ ही मिथ्या अर्थ प्रचार के कारण, जिन वैदिक शब्दों को विभिन्न देवी-देवताओं के अर्थों तथा रूपों में माना जा रहा था, और जो विभिन्न जड़ देवी-देवताओं की प्रतिमा-पूजन का आधार बना हुआ था, उसका उन्होंने खण्डन किया, और लगभग एक सौ संज्ञा वाचक शब्दों के " एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" इस वेद के वचनानुसार, ईश्वर परक अर्थ करके, विभिन्न देवी-देवता वाद की नींव हिलाकर एकैश्वरवाद की स्थापना की। ईश्वर के जिस स्वरूप का महर्षि ने प्रतिपादन किया, वह वेदानुकूल था। उन्होंने वेद मन्त्रों के प्रमाण देकर बतलाया, कि ईश्वर एक अद्वितीय सार्वभौम, सर्वत्रव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, अनादि तथा अनन्त व्यक्तित्व है। वह जन्म-मरण-बन्धनों से मुक्त सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह प्राणिमात्र के प्रति दयालु तथा न्यायकारी है। उसका कर्म-जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करना, साथ ही जीवों के पाप पुण्यों का फल ठीक-ठीक पहुंचाना है। अतः उसको सीमित क्षेत्र में स्थित तथा शरीरधारी होकर अवतार रूप में मानकर जन्म-मरण-चक्र में बान्धना तर्क तथा वेद विरूद्ध है।

अब रही धर्म की बात, उस समय प्रायः धर्म का अर्थ कुछ तिलक छाप आदि अथवा मनुष्यों के कतिपय समुदायों को धर्म समझा जा रहा था। इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों के आधार पर अनेक कथित धर्म, संसार में प्रचलित थे। चूंकि उनमें वैचारिक एकता का अभाव था, अतः वे पारस्परिक संघर्षों का कारण बने हुए थे। प्रत्येक समुदाय अपने सम्प्रदाय को उच्च व पवित्र मान कर अन्य मतों को निकृष्ट मानता और उनसे घृणा और द्वेष करता था। महर्षि ने धर्म के इस मिथ्या अर्थ का बड़ी कठोरता से खण्डन किया। उन्होंने बाह्य चिन्हों को गौणता देकर विभिन्न मानव-समुदायों को धर्म का स्थान न देकर, कुछ नैतिक सिद्धान्तों—विचार, आचार, आहार तथा व्यवहारगत पवित्रता को धर्म का स्थान, दिया। धर्म का यह अर्थ तथा स्वरूप भी, ईश्वर के समान सार्वभौम तथा एक ही संभव है ऐसा उन्होंने प्रतिपादित किया। इस धर्म का आधार "वेदो ऽखिलो धर्म मूलम" के अनुसार उन्होंने वेदों को बतलाया। क्योंकि वेद ईश्वर की पवित्र सर्वहितकारी वाणी है, तो ईश्वर के समान ही उसके वैदिक आदेश भी सार्वभौम होंगे; ऐसा उनका विचार था। इस प्रकार इस वैदिक धर्म का सम्बन्ध न तो किसी जाति अथवा देश विशेष से है, अपितु संसार के प्राणि मात्र के कल्याण तथा उपकार के जितने भी कर्म हैं, उनको ईश्वर की आज्ञानुसार, पक्षपात रहित, न्याय के साथ व्यवहार में लाना धर्म है। यह धर्म केवल मनुष्यों के कल्याण तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि प्राणि-मात्र का कल्याण जिन सिद्धान्तों के आचरण से हो, उसे धर्म कहा जाता है। इसके विपरीत पाषाण-प्रतिमाओं के सामने, मूक निर्दोष प्राणियों, यहां तक कि मनुष्यों तक को बलि चढ़ाना, किन्हीं विशेष अवसरों पर पशुओं की सामूहिक हत्या करना, माँस-मदिरा आदि का सेवन सभी कर्म अधर्म हैं; चाहे वह किसी भी रूप में किये जाते हों। ऐसा महर्षि ने अपने इस ग्रन्थ में सिद्ध किया।

इस प्रकार मानवमात्र के विचार, आचार, आहार तथा व्यवहार को पवित्र बनाने के लिये, जिन शिक्षाओं की आवश्यकता है, उनका वर्णन सत्यार्थ प्रकाश के प्रारम्भिक दश सम्मुल्लासों में स्थल-स्थल पर मिलता है। इस ग्रन्थ का दूसरा समुल्लास तो इस ही उद्देश्य से लिखा गया है। महर्षि ने एक बेहतर मनुष्य का निर्माण, उसकी उत्पत्ति से पूर्व ही उसके बनने वाले माता पिता के उत्तम पवित्र विचार आचारादि के आधार पर ही संभव है, इस वैज्ञानिक सत्य सिद्धान्त का प्रकाश इस ग्रन्थ द्वारा किया। राजा और प्रजा के क्या कर्त्तव्य हैं? उनका पारस्परिक कैसा व क्या सम्बन्ध व्यवहार होना चाहिये? इन सम्पूर्ण बातों का विवेचन छठे समुल्लास में करके तात्कालिक राजाओं में प्रचलित अनेक दुर्गुण-दुर्व्यसनों को छोड़ने तथा उनके उत्तम पवित्र आचरण का मार्ग प्रशस्त किया।

इसके अतिरिक्त "स्वर्ग-नरक" किसी आसमान पर अथवा धरती के नीचे नहीं हैं, अपितु इसी धरती पर हमारे गृहस्थ जीवन में प्रतिदिन तथा सर्वत्र दिखाई देते हैं। जो सुख विशेष तथा दुख विशेष भोगने के रूप में प्रत्येक योनिगत जीवों में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं।

इसी प्रकार पाप-पुण्य के सम्बन्ध में भी महर्षि ने सभी परोपकार युक्त यज्ञादि कर्मों को पुण्य तथा प्राणियों को पीड़ा पहुंचाने को पाप सिद्ध किया। इसके विपरीत गंगा स्नानादि से मुक्ति अथवा स्वर्ग प्राप्ति को पुण्य मानने का उन्होंने खण्डन करके पुण्य-पाप शब्दों के सत्य अर्थों का प्रकाश इस ग्रन्थ द्वारा किया।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम दश समुल्लास सत्य धर्म के प्रतिपादन के लिये मण्डनात्मक रुप से और अन्तिम चार समुल्लास विधर्मियों की असत्य, बुद्धि विरुद्ध, मान्यताओं तथा परम्पराओं आदि के खण्डन के रूप में लिखकर "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के परित्याग करने का मार्ग प्रशस्त किया गया है। ●

सत्यार्थ प्रकाश उत्तरार्द्ध : खंडन मंडन में लेखक का प्रयोजन

—डा० भवानीलाल भारतीय

★

अर्वाचीन भारतीय धर्म सुधारकों में ऋषि दयानन्द का नाम अन्यतम है। उन्होंने पुरातन वैदिक धर्म की पुनः स्थापना का महत्व-पूर्ण कार्य किया। मध्यकालीन युग में धर्म के नाम पर जिन मिथ्या-वादों का प्रचलन हो गया था, और जिनके कारण संपूर्ण भारतीय हिन्दू समाज में अवसाद, निष्क्रियता तथा जड़ता छा गई थी उसे दूर कर धर्म के मौलिक स्वरुप को प्रकट करना उनका प्रमुख लक्ष्य रहा। ऋषि दयानन्द के धर्म संशोधन का कार्य द्विविध प्रवृत्तियों का अनुसरण करता है। सर्वप्रथम वे धर्म के वास्तविक प्रकृत स्वरुप का दिग्दर्शन कराते हैं और उसके अनन्तर धर्म के नाम पर प्रचलित विभिन्न बाह्याडम्बरों और पाखण्डों के पुंज स्वरुप मत मतान्तरों की आलोचना में प्रवृत्त होते हैं। प्रत्येक धर्म संशोधक को इन दोनों प्रवृत्तियों का सहारा लेना ही पड़ता है। धर्म के विधेयात्मक स्वरुप की रुपरेखा निश्चित करने के अनन्तर उसके लिये यह भी आवश्यक हो जाता है कि धर्म के नाम पर प्रचलित जो नाना कुसंस्कार, अंध विश्वास और रूढ़िबद्ध धारणायें हैं उनके माया-जाल से जन-समाज को मुक्त किया जाय। पुरातन कालीन सभी संस्कारकों ने यह कार्य किया। बुद्ध ने अपने आचार प्रधान धर्म का उपदेश तो दिया ही, साथ ही वे तत्कालीन ब्राह्मण धर्म में उत्पन्न हुये विकारों की कटु आलोचना करने से भी विरत नहीं हुये। शंकर ने वाममार्गी कपालिकों और जैन, बौद्ध आदि सम्प्रदायों का जो कटु खण्डन किया है वह किसी भी जानकार से छिपा नहीं है।[1] कबीर से लेकर राममोहनराय तक के धर्म सुधारकों में भी यही प्रवृति स्पष्टतया लक्षित होती है।

सत्यार्थप्रकाश की रचना

ऋषि दयानन्द ने अपने सिद्धान्तों और मान्यताओं के स्पष्टीकरण हेतु जो बृहद् साहित्य निर्मित किया, उनमें सत्यार्थ प्रकाश अन्यतम है। इसके चौदह समुल्लासों का वर्गीकरण और ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में मानव मात्र के आचरणीय धर्म की विस्तृत मीमांसा तथा उत्तरार्द्ध के चार समुल्लासों में भारतवर्षीय तथा अन्य देशस्थ मत सम्प्रदायों की आलोचना यह सिद्ध करती है कि वे अपने इस कर्तव्य के प्रति पूर्णतया जागरुक थे, तथा यह भी मानते थे कि एक धर्म संशोधक के नाते उन्हें मत मतान्तरों की समीक्षा रुपी कठोर किन्तु आवश्यक कर्तव्य का पालन करना है।

सत्यार्थप्रकाश का प्रथम प्रकाशन १८७५ ई० में मुरादाबाद निवासी राजा जयकृष्णदास की प्रेरणा से हुआ। उस समय शीघ्रतावश सत्यार्थ प्रकाश के केवल बारह समुल्लास ही प्रकाशित हो पाये थे। कालान्तर में जब इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने की योजना बनी, तो स्वामी जी ने समग्र रूप से ग्रन्थ का संशोधन एवं परिवर्धन किया। प्रथम संस्करण में लेखकों के प्रमाद तथा प्रूफ शोधन आदि की भूलों के कारण कई ऐसी बातें भी छप गई थीं जो स्वामी जी के अभीष्ट के प्रतिकूल थीं। अपने अत्यधिक व्यस्त जीवन के कारण स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण का आद्योपान्त परिष्कार नहीं कर सके थे। उनकी मातृभाषा भी गुजराती थी और तब तक उन्हें आर्य भाषा हिन्दी का विशेष अभ्यास भी नहीं था, अतः ग्रन्थ की भाषा और शैली में भी सौष्ठव नहीं आ सका।[2]

परन्तु द्वितीय संस्करण में इन सभी न्यूनताओं का परिष्कार करने की चेष्टा की गई।

प्रायः शंका की जाती है कि सत्यार्थ प्रकाश में खण्डन मण्डन के अध्यायों का लेखन क्यों आवश्यक था? क्या लेखक के लिये इतना ही पर्याप्त नहीं था कि वह धर्म के वास्तविक स्वरूप सत्य अर्थ का प्रकाशन करके ही अपनी लेखनी को विराम देता, इसी में सत्यार्थप्रकाश की सार्थकता होती। क्या उसके लिये एतद्देशीय तथा अन्य देशोत्पन्न मत मतान्तरों की कठोर एवं आक्रामक आलोचना

---

१. द्रष्टव्य माधवाचार्य लिखित 'शंकर दिग्विजय।'

२. द्रष्टव्य- सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका- द्वितीय संस्करण

से विरत होना उचित नहीं होता? स्वामी जी को भी इस प्रकार के आक्षेपों की पूर्ण आशंका थी। फलतः उन्होंने स्वयं ही ग्रन्थ की भूमिका में मत-मतान्तरों की आलोचना में निहित अपनी तटस्थ किन्तु सारग्राहिणी दृष्टि को स्पष्ट करते हुये लिखा है—"मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना—सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।

वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है।"

मत मतान्तरों की समालोचना में स्वामी दयानन्द पूर्णतया पूर्वाग्रह मुक्त दृष्टिकोण लेकर प्रवृत्त हुये थे। वे यह अनुभव करते थे कि वैदिक धर्म के दिव्य आलोक से जो मत एवं सम्प्रदाय जितने दूर चले गये हैं, मानव जाति को पथ भ्रष्ट करने में वे उतने ही सक्षम हैं। इस प्रकार ईसाइयत और इस्लाम जहां पैगम्बरवाद, स्वर्ग-नरक की मिथ्या कल्पनाओं तथा अनेक प्रकार के विद्या-विरुद्ध, विज्ञान-विरुद्ध एवं तर्करहित मतवादों का एक पुंज मात्र रह गये हैं, वहां भारत में ही उत्पन्न बौद्ध और जैन धर्म में आस्तिक भावना से शून्य वेद विरोधी सिद्धान्तों का ही बाहुल्य है। और तो और, जो शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सम्प्रदाय किसी न किसी रुप में वेद प्रामाण्य को स्वीकार भी करते हैं, वे भी वेदों की अमल धवल, पावन एवं लोक कल्याणकारी शिक्षाओं से बहुत दूर हट चुके हैं। अतः सत्यार्थप्रकाशकार के लिये सैमेटिक मतों का खण्डन जितना आवश्यक था, उतना ही आर्यावर्त देशोत्पन्न साम्प्रदायिक अभिनिवेश को चतुर्दिक् फैलाने के लिये उत्तरदायी मत पन्थों का निराकरण भी अनिवार्य था। इसी देश के करोड़ों लोगों द्वारा अभिमत विभिन्न सम्प्रदायों और मतों का निस्संकोच भाव से खण्डन कर स्वामी दयानन्द ने जहां अपनी पक्षपात शून्य दृष्टि का परिचय दिया, वहीं यह भी स्पष्ट कर दिया कि धर्म संशोधक के लिये खण्डन मण्डन का कार्य, चाहे वह कितना ही अप्रिय क्यों न हो, अवश्यमेव करणीय होता है।

इस प्रसंग में स्वामीजी लिखते हैं—"यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मत मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसा ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्तता हूं . . . क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और और दूसरे मत की निन्दा हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं वैसे ही मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन के बाहर हैं।"

स्वामी दयानन्द ने अपनी भूमिका में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि किसी ग्रन्थ का अध्ययन करते समय वाक्यार्थ बोध के लिये आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और तात्पर्य का जानना आवश्यक है। लेखक अपने जिस अभिप्राय को स्पष्ट करना चाहता है, वही उसके वाक्यों से स्फुट हो, यह आकांक्षा कहलाती है। जिस शब्द में जिस अर्थ को प्रकट करने की शक्ति होती है, वह योग्यता है। जिस पद का जिस अन्य पद से सम्बन्ध होता है उसे उसके समीप रखना या बोलना "आसक्ति" कहलाती है। वक्ता या लेखक के अभिप्राय को ही उसके लेख या कथन से निकालना 'तात्पर्य' कहलाता है क्योंकि लेखक के अभिप्राय से विरुद्ध तात्पर्य निकालना सर्वथा अन्यायपूर्ण है।

सत्यार्थ प्रकाश के उत्तरार्द्ध के लेखन में स्वामी जी को पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा था। उन्होंने उपदेशक अवस्था में आने से पूर्व व्यापक देशाटन, भ्रमण, मत-मतान्तरों एवं सम्प्रदाय पन्थों के विभिन्न रुपों का दर्शन, विभिन्न पूजा उपासना प्रणालियों के सम्यक् आलोचन तथा धार्मिक ग्रन्थों के विपुल अध्ययन के द्वारा धर्म के नाम पर प्रचलित विश्वासों की यथार्थता को जान लिया था। वे यह भी अनुभव करते थे कि धर्मालोचन तथा मत-समीक्षण का कार्य पर्याप्त कंटकाकीर्ण होता है इसलिये सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका को समाप्त करते-करते उन्होंने यह भी आशंका प्रकट की है कि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे। परन्तु उन्हें मानव के विवेक पर भी पूर्ण विश्वास था। अतः वह यह भी लिखने से नहीं चूके कि बुद्धिमान लोग यथायोग्य इसका (ग्रन्थ का) अभिप्राय समझेंगे।

इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश जैसे धार्मिक विश्व कोश की रचना में निहित अपनी धारणा को स्पष्ट करने के अनन्तर ही स्वामी दयानन्द ने ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में विभिन्न आध्यात्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय एवं दार्शनिक प्रश्नों की मीमांसा की। ईश्वर और उसका स्वरुप, बालकों का शिक्षण और पालन, गार्हस्थ्य जीवन तथा उसकी अनुषंगिक समस्यायें, वानप्रस्थ और परिव्राजकों के कर्त्तव्य राजा और प्रजा के अन्योन्याश्रित धर्म वेद और उसकी सार्वभौम शिक्षायें सृष्टि उत्पत्ति विषयक दार्शनिक चिन्तन बन्धन और मोक्ष का रहस्य तथा आचार अनाचार भक्ष्याभक्ष्य जैसे लौकिक

विषयों का प्रसंगोपांत्त विवेचन करने के अनन्तर स्वामी जी ने वैदिक धर्म से इतर मत-मतान्तरों की समीक्षा के गुरुतर कार्य के लिये अपनी लेखनी उठाई।

एकादश समुल्लास की अनुभूमिका

खण्डन-मण्डन प्रधान प्रत्येक समुल्लास के प्रारम्भ में स्वामी जी ने पृथक-पृथक् अनुभूमिकायें लिखी हैं जिनमें उन्होंने तत् तत् मत सम्प्रदाय की समीक्षा के विषय में अपने हार्द को स्पष्ट किया है। एकादश समुल्लास में आर्यावर्त (भारतवर्ष) में जन्में मतों की आलोचना निबद्ध हुई है, अतः यह आवश्यक था कि वे इस अनुभूमिका में अपने एतद् विषयक आलोचनात्मक दृष्टिकोण को व्यक्त करते। लेखक की यह धारणा है कि महाभारत के युद्ध से पूर्व न केवल इस देश में अपितु अन्य देशों में भी वैदिक नीतिरीति का ही प्रचलन था और वेदोक्त मान्यताओं को स्वीकार कर संसार के सब देशवासी परस्पर मैत्री और बन्धुत्व भाव में आबद्ध थे। महाभारत का प्रचण्ड युद्ध मानो आर्य संस्कृति के विनाश का दूत बन कर आया। कौरव और पांडवों के ग्रह कलह ने दोनों ओर के वीर पुरुषों का तो विनाश किया ही, उससे आर्य धर्म और वैदिक जीवन के मूल्यों को भी सबसे बड़ा आघात पहुंचा। वैदिक धर्म के प्रवक्ता ऋषि मुनि धराधाम से लुप्त हो गये। क्षत्रिय गण निर्वीर्य, कदर्य और अपदार्थ बन गये ऐसी स्थिति में अज्ञान और अविद्या के वशवर्ती होकर नाना भ्रान्त मतों का प्रचलित हो जाना स्वाभाविक ही था।

लेखक ने वेद विरुद्ध मतों को मोटे तौर पर चार वर्गों में विभाजित किया है और अपनी अनुप्रास प्रियता के कारण उन्हें पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी का नाम दिया। वेदोक्त सिद्धान्तों को विस्मृत किये जाने के परिणाम स्वरूप तंत्र एवं पुराणाश्रित जो मत पन्थ भारत में उत्पन्न हुये, उन्हें पौराण मत कहना ही समीचीन था। इन वेद विरुद्ध मतों के भेद प्रभेद इतने अधिक हैं कि उनको ठीक प्रकार से गिनना भी सम्भव नहीं है, किन्तु स्वामीजी ने वाममार्ग, शैव, वैष्णव, निर्गुण मत आदि अवान्तर मत सम्प्रदायों का विशद विवेचन और परीक्षण कर यह स्पष्ट कर दिया कि ये सभी मत पन्थ वैदिक धर्म के विकार मात्र ही हैं, जिन्होंने अपने संकीर्ण मत विश्वासों और बाह्याडम्बरों से धर्म के वास्तविक रूप को छिपा दिया है।

स्वामीजी ने अनुभूमिका में अत्यन्त विनम्रतापूर्वक यह लिख दिया है कि अपनी विद्या, बुद्धि और स्वाध्याय के बल पर ही जैसा उनको इन आर्यावर्त्तीय मतमतान्तारों का बोध हुआ, वेसा सबके आगे निवेदित कर दिया। लेखक की विनम्रता और आलोचना में निहित उसकी सदाशयता और पक्षपात रहितता इन शब्दों में स्पष्ट ध्वनित होती है—"इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि या विरोध करने में नहीं, किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है।" उनकी दृष्टि में मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी में है कि हम सत्यासत्य का निर्णय करें न कि व्यर्थ के वाद-विवाद द्वारा विरोध बढ़ायें। परन्तु साथ ही उनकी यह भी दृढ़ धारणा थी कि जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मत-मतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। अतः वे सर्व शक्तिमान् परमात्मा से यह प्रार्थना कर अपने प्राक्कथन को समाप्त करते हैं कि वह (परमात्मा) एक मत में प्रवृत होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे। ●

अनेक देश भक्त क्रान्तिकारियों का प्रेरणास्रोत आग्नेय ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश

✱ पं० सत्यप्रिय शास्त्री जी, एम० ए०, साहित्याचार्य, प्राचार्य दयानन्द ब्रा० म० वि० हिसार

१८५७ के स्वातन्त्र्य समर की विफलता के पश्चात् भारत में स्वाधीनता आन्दोलन अतीव मन्द हो गया था, ब्रिटिश शासकों के अत्याचारों तथा उनके द्वारा डाली गई पारस्परिक फूट के कारण भारतीय स्वाधीनता के शब्द जिह्वा पर लाने से सब कतराने लगे थे, उस भयावह दौर में ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण १८७५ में प्रकाशित किया[1] जिसने अपनी प्रखर देशभक्ति पूर्ण रवैये से उस समय भारतीयों में देशभक्ति की भावना को दृढ़मूल किया, उसके लिये निम्न वाक्य ध्यान देने योग्य हैं, "एक तो यह कि नोन और पौन रोटी में जो 'कर' लिया जाता है मुझ को अच्छा मालूम नहीं देता, क्योंकि नोन बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं किन्तु सबको नोन आवश्यक होता है, और वे मेहनत मजदूरी से जैसे तैसे निर्वाह करते हैं, उनके ऊपर भी वह नोन का ('कर') दण्डतुल्य रहता है, इससे दरिद्रों को क्लेश पहुंचता है, अतः कर (टैक्स) लवणादिकों के ऊपर न चाहिये, पौन रोटी से भी गरीबों को बहुत क्लेश होता है, क्योंकि गरीब लोग कहीं से घासोच्छेदन करके ले आय वा लकड़ी का भार (तो) उनके ऊपर कौड़ियों के लगने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा, इससे पौन रोटी का जो कर स्थापन करना है सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं"···सरकार कागद को बेचती है, और बहुत सा कागजों पर धन बढ़ा दिया है, इससे गरीब लोगों को बहुत क्लेश पहुंचता है, सो यह बात राजा को करनी उचित नहीं, क्योंकि इसके होने से बहुत गरीब लोग दुःख पाके बैठे रहते है, कचहरी में बिना धन के कुछ बात होती नहीं, इससे कागजों के ऊपर जो बहुत धन लगाया है, सो मुझको अच्छा मालूम नहीं देता,"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी ने जिस नमक कानून के विरुद्ध १९३० में सत्याग्रह द्वारा आवाज उठाई थी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने उक्त लेख के द्वारा इस विषय में उनसे ५५ वर्ष पूर्व ही अंग्रेज सरकार को दुत्कारा था, आगे चलकर स्वाधीनता संग्राम के कालखण्ड में हमारे नेताओं ने स्वाधीनता प्राप्ति के जो भी उपाय प्रयुक्त किये मूलतः ऋषि दयानन्द सरस्वती अपने वाङ्मय में उनके बीज रूप में उल्लेख कर गये थे, वर्तमान सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती के ये शब्द—"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान, कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायी नहीं।[3] पाठक सोचें कि उस भयानक काल में इस प्रकार खुले शब्दों में विद्रोह की ध्वनि को बुलन्द करना मौत को निमंत्रण देना था, आगे ऋषि देश की दुर्दशा पर खून के आँसू बहाते हुये लिखते हैं—"विदेशियों के आर्यावर्त में राजा होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढना न पढाना, बाल्यावस्था में अस्वयम्वर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचारादि कर्म हैं, जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है"[4]

एक स्थान पर महर्षि १८५७ के स्वातन्त्र्य समर का आंखों देखा प्रसंग वर्णन करते लिखते हैं—"जब सम्वत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्तियां अंग्रेजों ने उड़ादी थीं, तब मूर्ति कहां गई थी? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की, और लड़े, शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के

---

१. सत्यार्थ प्रकाश १८७५ का प्रथम संस्करण पृ० ३८४-८५।
२. पूर्वोक्त पृ० ३८७।
३. वर्तमान स० प्र० ८वां समु०।
४. स० : पृ० १० समु०।

के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रें उड़ा देता और ये भागते फिरते"[1] इन वाक्यों में देश की दुरवस्था से उत्पन्न महर्षि के हृदय की वेदना कितनी स्पष्ट है, यह किसी से छिपी नहीं है,

ब्राह्मसमाजियों की समालोचना के प्रसंग में ऋषि के निम्न वाक्य कितने मार्मिक हैं – "देखो (अंग्रेज) अपने देश के बने हुवे जूतों को आफिस और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं, इतने में ही समझलो कि अपने देश के बने हुए जूतों का भी कितना मान-प्रतिष्ठा करते है? उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते"[2] पाठक सोचें जिस ऋषि दयानन्द का हृदय अपने देश के जूतों का अपमान भी न सह सका, क्या वह अपने देश, भारतमाता एवं ३२ करोड़ स्वदेशी बन्धुओं को विदेशी शासकों की नारकीय दासता की शृखलाओं में जकड़ा हुआ देखकर रात दिन खून के आंसू न बहाता होगा? और उस बदनाम गुलामी से छुटकारा दिलाने को प्रतिपल छटपटाता न होगा? इसी प्रसंग में ब्राह्मसमाजियों को उनकी देशभक्ति की न्यूनता पर फटकारते हुए लिखते हैं, "इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है, ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं, अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके बदले भरपेट निन्दा करते हैं, व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं, ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते ब्रह्मा से लेकर आर्यावर्त में बहुत से विद्वान् हो गये, उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियन की ही स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के बिना क्या कहा जाय?[3] जब प्रत्येक भारतीय अंग्रेज को ही अपना मां-बाप तथा सभ्यता, संस्कृति एवं प्रगति का एक मात्र मूलाधार मान रहा हो, ऐसे समय में अपनी सभ्यता, महापुरुषों की उच्चता का डिण्डिमघोष करना इसी साहस के पुतले, धुन के धनी-धैर्य के प्रतीक ऋषि दयानन्द का ही काम था, जब देश के लगभग सारे ही नेता अंग्रेज के न्यायालयों में विश्वास करते थे और उन्हे दूध का दूध और पानी का पानी के अनुसार पक्षपातरहित स्वीकार करते थे, तब ऋषि दयानन्द की दूरदर्शिनी दृष्टि ने उसकी पोल निम्न शब्दों में प्रकट की थी, — "अनुमान होता है कि इसीलिये ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपातकर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं।"[4] कांग्रेस के सारे ही नेता अंग्रेजी सरकार की अदालतों को पक्षपात शून्य मानते थे, यहां तक कि लोकमान्य तिलक जैसा पुरुष भी बहुत अंश में इस मन्तव्य से सहमत था, परन्तु १६१६ में तिलक ने मिस्टर शिरोल पर उसके द्वारा लिखित एक पुस्तक में अपने प्रति लिखे गये अपमानजनक शब्दों के आधार पर जब मानहानि का अभियोग इंग्लैण्ड की अदालत में चलाया, तब शिरौल को दोषी होते हुए भी साफ बचा दिया था, तब इन नेताओं ने आश्चर्य पूर्ण नेत्रों से अंग्रेज अदालतों के प्रखर जातीय पक्षपात को देखा और तब से उनके प्रति अविश्वास व्यक्त करना आरम्भ किया था, परन्तु महर्षि दयानन्द ने तो उससे ४० वर्ष पूर्व ही उक्त सत्य को भांपकर स्पष्ट कर दिया था, १६२१ के आन्दोलन में अंग्रेजी अदालतों का बहिष्कार भी एक पक्ष था, इसके अतिरिक्त उक्त ग्रन्थ के दशम समुल्लास में गौहत्या के विपरीत लिखना, जबकि उसके पूर्व ही १८५७ के स्वातन्त्र्य समर के मूल कारणों में गौहत्या एक मूलभूत एवं प्रमुख कारण रहा था, और उसी समय में भी इसी प्रश्न को लेकर नामधारी सिक्खों के गुरू रामसिंह जी को देशनिर्वासन का दण्ड दिया गया था, ऐसे समय इस प्रश्न को तूल देना और गौहत्या का सारा ही उत्तरदायित्व विदेशी सरकार पर डालना एक प्रकार देश की स्वाधीनता के लिये प्रत्येक के हृदय को आन्दोलित करने वाला नारा देना था। इसके अतिरिक्त उक्त ग्रन्थ के ११ वें समुल्लास के अन्त में राजवंशावली देना, क्या इस ग्रन्थ के धार्मिक मात्र होने की धारणा का खण्डन नहीं है? देशवासियों के हृदय में अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, इतिहास एवं पूर्वजों के गौरव को उद्बुद्ध करके उन्हें स्वाधीनता प्राप्ति की ओर अग्रसर करना ही तो उक्त वंशावली देने का अभिप्राय हो सकता है, यह है वह पृष्ठभूमि जिसके आधार पर यह ग्रन्थ देश भक्त क्रान्तिकारियों का प्रेरणास्रोत बना है, तथा स्वाधीनता के गहन चिन्तन के पश्चात् लिखित अपने मूल भूत सूत्रों के कारण आने वाली देश भक्तों की पीढ़ी का पथ प्रदर्शक बना।

इस ग्रंथ से न जाने कितने देश भक्तों ने प्रेरणा प्राप्त कर राष्ट्र की बलि पर मर मिटने का ऐतिहासिक श्रेय प्राप्त किया, उन्हीं देश भक्तों में श्यामजी कृष्ण वर्मा को प्रमुख देखते हैं, जिन्होंने स्वयं ऋषि दयानन्द के शिष्यत्व को स्वीकार किया और उनके सम्पर्क तथा उन के सत्यार्थ प्रकाश से देशभक्ति की प्रेरणा लेकर स्वाधीनता के लिए ऐतिहासिक कार्य किया, इन्हीं के क्रांतिदीक्षा में दीक्षित शिष्य मदनलाल ढींगड़ा तथा स्वातन्त्र्यवीर सावरकर हैं, जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश से स्वाधीनता की प्रेरणा प्राप्त की, यहां तक कि सावरकर तो अण्डमान जेल में कारावास का दण्ड भोगते समय भी वहां के बन्दियों को जो ग्रंथ पढ़ाया करते थे, उनमें सत्यार्थ प्रकाश प्रमुख था, अण्डमान में हिन्दी पुस्तकों की भरती करके फिरते अन्तस्थ वाचनालय रखे गये थे, जिनका वर्णन इसी ग्रन्थ में अन्यत्र है, इन वाचनालयों में अर्थ-

---

१. स : प्र : ११वां समु०।
२. स : प्र : ११वां समु०।
३. स : प्र : ११वां समु०।
४. स : प्र : १३-७७,

शास्त्र, राजनीति, राजकीय आन्दोलन आदि नवीनतम पुस्तकें भी नित्य आती रहती थीं, जिससे प्रौढ़ विषयों का ज्ञान होने में सुविधा मिलती रहती थी, सत्यार्थ प्रकाश की ओर मैंने विशेष ध्यान दिलवाया, राजबन्दी भी उसे बार २ पढ़ते रहे, स्वामी दयानन्द जी का वह ग्रन्थ कुछ अपवाद छोड़ कर हिन्दु संस्कृति के उच्चतत्व मन पर अंकित करता है, हिन्दु धर्म का राष्ट्रीय स्वरूप व्यक्त करता है, तथा एक अदम्य उत्साही छाती का प्रचारक,[1] पाठकवर्ग इतने मात्र से ही वीर-सावरकर का सत्यार्थ प्रकाश के प्रति दृष्टिकोण समझ सकते हैं।' उनके शब्दों में यह राष्ट्रयधर्म का प्रतिपादक एवं बोधक ग्रंथ है। १९५७ में जब दिल्ली की केन्द्रिय आर्य सभा की ओर से सावरकर जी का सार्व जनिक अभिनन्दन किया गया तब आपने अपना मन्तव्य निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया था—"आर्य्य समाज और महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में मेरी श्रद्धा किसी से छिपी नहीं है, महर्षि का सत्यार्थ प्रकाश पढ़ कर मैं सन्तोष प्राप्त करता हूं, मैं जिस स्वाधीनता का चिन्तन करता हूं उसमें महर्षि का सत्यार्थ प्रकाश सहायक है, इसलिए मैं स्वामी दयानन्द का पक्का चेला हूं। इस समय देश में आर्य समाज ही एक ऐसी संस्था है जो प्रत्येक प्रकार के राजनीतिक स्वार्थों और सन्देहों से ऊपर है, इसी में देश के अधिक कल्याण की क्षमता है।"[2]

इस ग्रन्थ से जिन देश भक्त युवकों ने प्रेरणा प्राप्त की उनमें काकोरीकेस के अमर हुतात्मा रामप्रसाद बिस्मिल का नाम मूर्धन्य है। जिसका सम्पूर्ण जीवन ही उक्त ग्रंथ के अध्ययन से पलट गया और एक कुमार्गगामी युवक आदर्श ब्रह्मचारी बन देश की आजादी के लिए अपनी खिलती जवानी भेंट कर गया, वह स्वयं ही लिखता है— "मुंशी जी ने आर्यसमाज सम्बन्धी कुछ उपदेश दिए, इसके बाद मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा, इससे तख्ता ही पलट गया, सत्यार्थप्रकाश के माध्यम ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया, मैं थोड़े ही दिनों में कट्टर आर्यसमाजी हो गया।[3] यही कारण था कि जब आप देश भक्ति के अपराध में विदेशी सरकार द्वारा फाँसी पर लटकाए गए तब आपने फाँसी के फंदे पर खड़े होकर महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रिय वेदमन्त्र "ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव, यद्भद्रं तन्न आसुव" का उच्चारण किया।[4] तथा अगले जन्म में परमात्मा से उसकी वाणी वेदवाणी का प्रचार करने की स्थिति में जन्म देने की इच्छा प्रकट की,[5] 'फांसी से पूर्व आपकी (बिस्मिल की) यह अन्तिम इच्छा थी कि मेरे शव को आर्य समाज को दे दिया जाये, गोरखपुर आर्य समाज ने उनके शव की अभूतपूर्व शोभा यात्रा निकाली और वैदिक रीति से संस्कार किया।[6]

महर्षि के इस विचित्र ग्रन्थ ने केवल सामान्य व्यक्तियों के मस्तिष्कों को ही प्रभावित नहीं किया प्रत्युत स्वाधीनता संग्राम में अग्रणी एवं सैनानी दादाभाई नौरोजी जैसे व्यक्तित्व को भी प्रभावित किया है। एक दिन लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने हैरान होकर देखा कि पारसी देश भक्त दादाभाई नौरोजी 'सत्यार्थप्रकाश' के पन्ने उलट रहे हैं, आपने विनोद में पारसी देशभक्त से प्रश्न किया क्या आप आर्यसमाजी बन गए हैं? "नहीं, मुझे स्वराज्य समर में स्वामी दयानन्द के ग्रंथ से भारी प्रेरणा प्राप्त होती है, दादाभाई जी ने उत्तर दिया।[7]

पाठकगण इस उद्धरण से ही उक्त ग्रन्थ में निहित स्वराज्य, स्वदेशी, स्वाधीनता एवं स्वभाषा के मौलिक विचारों का मूल्यांकन कर सकते हैं। अमर हुतात्मा भगतसिंह के परिवार को तो ऋषि दयानन्द एवं उनकी इसी अपूर्व कृति ने बलिदानपथ का पथिक बना दिया था, इसके दादा श्री अर्जुनसिंह जी को इस ग्रंथ से कितना प्रेम था निम्न घटना से जाना जा सकता है—'एक बार दादा अर्जुन सिंह किसी संबंधी के यहाँ गए हुए थे, वहाँ किसी ग्रंथी ने सत्यार्थ-प्रकाश के नाम से कल्पित उदाहरण देकर खंडन करना आरम्भ किया आपने कहा कि उसमें ऐसा नही लिखा, यह आप स्वयं ही मनघड़न्त बात कह रहे हैं, परन्तु पुस्तक न होने से श्रोता सन्देह में थे, दादाजी वहाँ से सायं अपने घर जो कि बीस कोस था गए और प्रातःकाल लौटकर पुस्तक दिखा बोले कि बताओ इसमें कहां है? तब ग्रन्थी चुप हो वहां से खिसक गया।[8] इसी ग्रंथ से प्राप्त स्वराज्य की प्रेरणा भगतसिंह के बलिदान के रूप में संसार के सम्मुख उजागर हुई।

अपनी प्रखर राष्ट्रीयता के कारण यह ग्रंथ विदेशी सरकार की आँखों में खटकता रहा है, मिस्टर शिरौल ने अपनी पुस्तक में एक अध्याय में इसे ब्रिटिश सरकार की जड़ें खोखली करने वाला करार दिया है। १९०९ में जब पटियाला में एक अंग्रेज ने अपनी कमजोरियाँ छिपाने के उद्देश्य से महाराजा को आर्यसमाज के विरुद्ध भड़काया, तब वहां जो मुकदमा चला, उसमें सत्यार्थप्रकाश के उद्धरण देकर आर्यसमाज, सत्यार्थप्रकाश एवं ऋषि दयानन्द को राजद्रोही बताया

---

१. आजीवन कारावास ३ पृ० ५९९,
२. नवभारत टाइम्स १६-८-५७,
३. आत्मकथा पृ० १५,
४. पूर्वोक्त पृ० भूमिका,
५. पूर्वोक्त पृ० १३२,
६. आ: प्र: स: यू: पी: का इतिहास पृ० १७१,
७. सैनिक समाचार २०-१०-१९६८ सुरक्षा विभाग द्वारा प्रचारित
८. सुधारक (झज्जर) का बलिदानांक पृ० २७४,

गया था। इसी प्रकार १९०२ में इलाहाबाद में, १९०५ में करांची में चलाए गए मुकदमों में सत्यार्थप्रकाश तथा आर्यसमाज को राजद्रोही ठहराने के प्रयत्न हुए, करांची में तो आर्यसमाज की तलाशी लेकर उसके मन्त्री के विरुद्ध राजद्रोही का मुकदमा भी दायर किया गया,[1] इसी प्रकार १९३५ के बाद दक्षिण हैदराबाद में भी वहां के निजाम ने इस ग्रंथ को जागृति का प्रतीक मानकर अपने राज्य में कई स्थानों पर इसे जब्त करवाया, तथा १९४५ में सिन्ध हैदराबाद में मुस्लिम मन्त्रीमण्डल ने इसमें वर्णित स्वराज्य की तीक्ष्ण भावना से भयभीत हो, अपने राज्य में विधिवत् इसकी जब्ती का आदेश जारी कर दिया था, जो कि शायद उनके अपने आका अंग्रेजी इशारे पर ही हुआ था, इसी बगावत के बलबलों से पूर्ण ग्रन्थ ने अनेक बलिदानियों को उत्पन्न किया।

१९६५ के भारत-पाक के युद्ध के दौरान शहीद होने वाले मेजर आशाराम त्यागी इसी की बदौलत शहीदों की पंक्ति में स्थान पा सके, हरियाणा के गौरव, ब्रिगेडियर होशियारसिंह तो युद्ध के मोर्चे पर भी सत्यार्थप्रकाश साथ लिए हुए थे, जो आज भी उनके घर में सुरक्षित उनकी स्मृति दिलाता रहता है। इन्हीं वीरों में १९६५ के अमर शहीद कैप्टन सुरेन्द्रकुमार भी इसी अमर ग्रन्थ की उपज थे जो कि अबोहर क्षेत्र के प्रसिद्ध आर्यसमाजी मास्टर तेगराम जी के सुपुत्र थे, इन्ही आर्यवीरों में प्रसिद्ध आर्यनेता स्व० ठा० यशपालसिंह के भतीजे कैप्टन विक्रमसिंह भी एक चमकते सितारे हैं। स्व० ठाकुर जी के कथनानुसार उन्हें कई बार सत्यार्थप्रकाश का राजधर्म प्रकरण पढ़ाया गया था। १९६२ को मुठभेड़ के दौरान वे शत्रु से भिड़ गए, परन्तु चीनी दरिन्दों द्वारा पकड़े गए और उनके द्वारा निर्दयतापूर्वक कुल्हाड़ियों से टुकड़े-२ कर उनका बलिदान कर दिया गया। वे ये बलिदानी थे, जिन्होंने स्वदेश के लिए अपार कष्ट सहे लेकिन पैर पीछे हटाना न सीखा था, यह सब महर्षि दयानन्द सरस्वती के इस अलौकिक, स्फूर्ति तथा प्रेरणाप्रद ग्रन्थ के अध्ययन का ही परिणाम था।

यदि कभी कोई निष्पक्ष इतिहासकार भारत की आज़ादी के संघर्ष का इतिहास लिखेगा तो इससे प्रेरणा प्राप्त कर अनेक बलिदानों के द्वारा स्वाधीनता के तरू पर मधुर फल उत्पन्न करने सुपरिणाम का सही मूल्यांकन कर सकेगा, स्वाधीनता संग्राम में इस ग्रन्थ का कितना महत्वपूर्ण योगदान रहा है, संसार का बुद्धिजीवी तभी जान पायेगा। परमात्मा हमारे देश में ऐसे निष्पक्ष तटस्थ तथा निर्भीकता से वास्तविक इतिहासों का चित्रण करने वाले सज्जन उत्पन्न करे, जिससे कि भारत की नई पीढ़ी स्वाधीनता के मूल्य को जान पाये।

१. जीवन संघर्ष पृ० ६६,

सत्यार्थ प्रकाश गीत

— पं० सत्यपाल भजनोपदेशक

आज धरा से असत अविधा अत्याचार मिटाना है।
सत्यार्थ प्रकाश ऋषि का घर घर में पहुंचाना है।
वेद भानु की आभा से यह अमर ग्रन्थ आलोकित है।
सार भरा जीवन का इसमें सत्य ज्ञान से पूरित है।
सत्यासत की सही कसौटी पूर्णतया अन्वीक्षित है।
है अनमोल वेद की कुन्जी विद्वानों ने माना है १॥

समुल्लास चतुर्दश जिनसे सत्य अर्थ प्रकाशित हो।
संशय शूल दूर हों निश्चत विमल ज्ञान उद्भासित हो।
तिमिर नसे हृदय तल का और जीवन सकल सुवासित हो।
आज मनुज के हृदय तल को सुन्दर सरल बनाना है ॥२॥

गुरूडम लीला पनप रही है निशदिन देखो आज यहां।
नाना मत पन्थों में भटक रहा है मनुज समाज यहां।
विलख रही है मानवता और दानवता रही गाज यहां।
दिशा हीन जो बने आज उन्हें सन्मार्ग पर लाना है ॥३॥

वेद ज्ञान की ज्योति फैले भूतल पर उजियाला हो।
हर व्यक्ति का जीवन संयम के सांचे में ढाला हो।
पापी पाखंडी दुर्व्यसनी दुर्जन का मुंह काला हो।
'मधुर'' स्वप्न साकार करेंगे आज यही प्रण ठाना है ॥४॥

—: सत्यार्थ प्रकाश-सप्तक :—

—कविवर "प्रणव" शास्त्री एम० ए० आर्यनगर फीरोजाबाद

वैदिक विधान का वितान तानने के लिए,
देव दयानन्द का ये पावन प्रयास है
भारतीय सम्पता का रुप है, अनूण जहाँ
संस्कृति सुजनता का विमल विकास है।
ऋषि और मुनियों को मान्य मान्यता से पूर्ण
गौरव गवेषणा का सत्य इतिहास है
मानवी मतों के अन्धकार को हटाने वाला
सत्यार्थ प्रकाश सत्य अर्थ का प्रकाश है ॥१॥

जहाँ वेद विद्या की तरङ्ग अङ्ग अङ्ग लिए
बहती विशुद्ध बोध गङ्ग प्रति भाग में
जहाँ यमुना सी तर्क तटिनी उछाह भरे
नित्य लहराती रहे निर्णय के राग में।
साधना सरस्वती भी छिपी अन्तराल मध्य
सङ्गम सजाती सदा सुखद सुहाग में
आओ आओ भूतल के सुधी सन्त स्नान करो
सत्यार्थ प्रकाश पुण्य पावन प्रयाग में ॥२॥

जहाँ ओम् नाम की महत्ता; सत्ता शिक्षा की है
चार वर्ण-आश्रमों का जहाँ सुविचार है
जहाँ राज धर्म, ईश-वेद, सृष्टि विद्याऽविद्या
बन्ध मोक्ष, भक्ष्याभक्ष्य, विषय विस्तार है।
भारतीय मतों की भी जहाँ है समीक्षा, और
नास्तिकी किरानी औ कुरानी का उद्धार है
वेद-ईशरत्न समुल्लास प्रकटे हैं, जहाँ
सत्यार्थ प्रकाश सत्य-सागर अपार है ॥३॥

कौन नहीं जानता है शास्त्रार्थ समर मध्य
विजय वरण की है, इसी तरुणाई ने
मानवता मङ्गल के मङ्गल-कलश भरे
प्रेम वारिधारा से ही इसी सरिता ही ने।
सादर समोद सुधा आमन्त्रित किए सदा
रत्न-राशि-प्राप्ति-हेतु इसी गहराई ने
राष्ट्र-भावना के स्वर साम हैं, गुंजाए गीत
सत्यार्थ प्रकाश की सुरीली शहनाई ने ॥४॥

धर्म का विशाल क्षेत्र सभी मानवों के लिए
एक है, अनेक नहीं यही बोल देता है
मत हैं, मुलम्मा और धर्म खरा कञ्चन है,
तर्क की तुला पर तो यही तोल देता है।
वैदिक विचारणा से तथ्य ध्रुव धारणा से
मिथ्या मतवादियों की खोल पोल देता है
सत्यार्थ प्रकाश तत्व चिन्तन मनन से ही
बुद्धि या विवेक के कपाट खोल देता है ॥५॥

सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाश-पुञ्ज पाते ही
सहस्त्रों अजान, जान ज्ञान,नेत्र पा गये
सहस्रों ने जीवन की धारा को ही मोड़ दिया
सहस्रों ही गङ्ग सत्सङ्ग में नहा गये।
सहस्रों ने सत्यता के दर्शन सानन्द किए
सहस्रों ही मोक्ष-धाम गुण गान गा गये
"प्रणव" सहस्रों तर्क-प्रतिभा-प्रसाद पाके
विश्व में विजेता नचिकेता से हैं, छा गये ॥६॥

पावनी वसुन्धरा के बुद्धिवादी बन्धुगण
विद्या के वितान धरातल में तनाइए
नाइए न शीश जगदीश के सिवाय कहीं
मानव-मस्तिष्क को निर्मल बनाइए।
ज्ञान या विज्ञान की समानता है, धर्म एक
प्रिय परिभाषा आज विश्व को सुनाइए
दिव्य दया-आनन्द-विचार वाटिका में वीरो!
सत्यार्थ प्रकाश की शताब्दियाँ मनाइए ॥७॥

सत्यार्थ प्रकाश की महिमा

—पं० बिहारीलाल शास्त्री

★

मतवाद तमो नष्टं हृष्टं सत् पदम् मंदलम् ।
जगज्ज्योतिर्मयं जातं सत्यार्थ रवि रश्मिभिः ॥

स्वराज्य सूर्य की ऊषा :—सन् ५८ में जब अंग्रेजों ने भारत की स्वतन्त्रता-क्रान्ति को पूर्णतया कुचल डाला और शासन ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हाथों से महारानी विक्टोरिया ने अपने हाथों में ले लिया तो एक विज्ञप्ति भारत में बाँटी कि अब सब के साथ न्याय और दया से पूर्ण माता-पिता के समान हितकारी, पक्षपात रहित, व्यवहार किया जायगा । इस पर भारत के हिन्दू व मुसलमान हर्ष से फूले न समाए। कवियों ने मलिका विक्टोरिया को सीता जी की सेवा में रहने वाली त्रिजटा का अवतार बताया । सर सैय्यद अहमद खां ने सब मुसलमानों को ब्रिटिश-शासन के चरणों में झुका दिया और हिन्दू नेताओं ने भी ब्रिटिश राज्य की भान्ति का उपदेश हिन्दुओं को दिया । पराधीनता के कुहरे में समग्र भारत डूब गया। उस समय श्री स्वामी दयानन्द जी ने विक्टोरिया की विज्ञप्ति के उत्तर में जो विचार व्यक्त किए थे, वे ही सत्यार्थ प्रकाश के ८वें समुल्लास में चमक रहे हैं ।

१. मत-मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है ।

२. कोई कितना ही करे, किन्तु जो स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उत्तम होता है, वैसा विदेशी राज्य नहीं ।

३. अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहनी ? किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है । जो कुछ है सो भी विदेशियों के पदाक्रांत हो रहा है ।

श्री स्वामी जी की उक्त पंक्तियाँ स्वराज्य सूर्य की उषा है । स्वामी जी लिखकर ही शान्त नहीं बैठ रहे, किन्तु अपने प्रमुख शिष्य श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी इंग्लैंड में पढ़ाने को भेजा और स्वराज्य के लिए कुछ करने को भी । श्री वर्मा जी ने इंग्लैंड में क्रान्तिकारी मण्डल की स्थापना की । भारत-मन्त्री के निजी सचिव कर्जन वायली को भारत-विरोधी होने के कारण गोली से उड़ाने वाले वीर बलिदानी श्री मदन लाल धींगरा और पूज्य वीर श्री सावकर जो वर्मा जी के ही शिष्य थे । सर्वप्रथम गरमदली होने के कारण विदेशी जेल में जाने वाले पूज्य लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह दोनों आर्य समाजी थे । कांग्रेस का कोई भी नेता ऐसा नहीं हुआ कि जिसने मुसलमानों के विचार स्वदेशी बनाये हों । महात्मा गांधी के परम प्रिय मुहम्मद अली, शौकत अली, अताउल्ला शाह बुखारी आदि लाखों रुपया कांग्रेस का खाकर समय पड़ने पर लीग में जा मिले । परन्तु पं० रामप्रसाद बिस्मिल का चेला वीरवर अशफ़ाक़ उल्ला खाँ शाहजहाँपुरी, भारत की स्वतन्त्रता के लिए फाँसी के तख्ते पर चढ़ गया और "आह !" न की । विचारधारा बदलने में आर्यसमाज की सी क्षमता कोई संस्था नहीं रखती ।

आर्य जाति के जीवन के लिए सुधा सेचन

एक ब्राह्मण दिल्ली में यह प्रचार करता था कि हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म दोनों ही मत अच्छे हैं । उस समय बहलोल लोदी दिल्ली का बादशाह था । उसने ब्राह्मण को बुलाकर कहा कि तुम क्या यह कहते हो कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के मत बराबर हैं ? ब्राह्मण ने स्वीकार किया तो बादशाह ने डाँट कर कहा कि इस्लाम और कुफ़्र एक समा न कैसे हो सकते हैं ? या तो तुम मुसलमान बनो या मरने को तैयार हो जाओ । ब्राह्मण ने मुसलमान होना अस्वीकार कर दिया तो लोदी ने अपने महल के

सामने जीवित ही अग्नि में भस्म करा दिया। मुसलमानी शासन में हिन्दू अपने धर्म को अच्छा नहीं कह सकता था। इस का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू का स्वाभिमान मर गया। वह आत्महीन बन गया। साधारण सा मुसलमान भी सगर्व कह देता था कि लाला तुम्हारा मजहब कच्चा है; इस्लाम ही सच्चा मजहब है। इधर ईसाई डंके की चोट हिन्दू धर्म का खण्डन करते फिरते थे। हिन्दू महापुरुषों श्री राम, श्री कृष्ण को अनेक लांछन लगाते थे और हिन्दू धर्म वालों (हिन्दू) की बोलती बन्द थी।

सर्व प्रथम ईस्ट इन्डिया कम्पनी का जब राज्य हुआ तो राजा राम मोहन राय ने कहा कि सब धर्म बराबर हैं। महात्मा गांधी भी यही कहते रहे। सत्यार्थ प्रकाश ने ही सर्व प्रथम विवेचना-पूर्वक घोषणा की कि सच्चा तो केवल वेद धर्म ही है। यह अमृत वाणी सुनते ही हिन्दू जीवित हो उठा। उसने स्वाभिमान से सर ऊंचा किया। आर्य समाजी चौराहों पर चुनौती देने लगे :—
"एक वैदिक धर्म क़दीम है सब दुकान दिन थोड़े की" (तेजसिंह)

ईसाइयों की बोलती बन्द हो गई। मौलवी सहम गये। अंध विश्वास फैलाने वाले भयभीत हो गये। सत्यार्थ प्रकाश ने अद्‌भुत धर्म-चेतना प्रदान की है। आज गांधीवाद और मार्क्सवाद ने आर्य जाति को फिर धर्मोपेक्षित बना डाला है। डरपोक राजनैतिक नेताओं के कारण पुनः इस्लाम और ईसाईयत अगंड़ाई ले रहे हैं। भारत के ऊपर-नीचे दो कट्टर इस्लामी राज्य बन गये हैं। आर्य जाति का संगठन छिन्न-भिन्न हो रहा है आर्थिक-दर्शन पर कोई संगठन स्थिर नहीं रहा करता। साम्यवाद का संगठन तब तक है, जब तक डिक्टेटरशिप शक्तिशाली है, शासन का डण्डा सिर पर है। किन्तु धार्मिक संगठन भावनात्मक एकता के आधार पर चिरजीवी रहता है।

९ सौ वर्ष की पराधीनता में भी हिन्दू राष्ट्र छिन्न-भिन्न नहीं हुआ। केवल भावनात्मक एकता के आधार पर। और वह धर्म है वैदिक धर्म। वैदिक धर्म पर न किसी देश के रीति-रिवाजों का प्रभाव है, न किसी जाति का पक्षपात इसमें है। न करामात या चमत्कारों और बुद्धि-विरुद्ध अंध विश्वासों को इसमें स्थान है। अतः राष्ट्र की भावनात्मक एकता के लिए सत्यार्थ प्रकाश ने इसे मान्य ठहराया और सब को मानने का उपदेश दिया। वैदिक धर्म उस समय का है, जब न अनेकों देश थे न अनेक जातियां थीं। अतः इस सार्वभौमिक वैदिक धर्म का मानना नियम है।

सत्यार्थ प्रकाश में मानव एकता के नियम

योरोप के और अमेरिका के लोग रंग पर ऊंच-नीच मान कर अन्य जाति वालों से घृणा करते हैं। इस्लामी देश अरबादि मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य धर्म वालों से घृणा करते हैं। ईसाई भी गैर ईसाईयों को घृणा के योग्य और पापी मानते हैं। केवल सत्यार्थ प्रकाश की ही यह घोषणा है—"मैं गुण कर्म से ऊंच-नीच मानता हूं।" सत्यार्थ प्रकाश में आचारात्मक कर्म पर ही ज़ोर दिया गया है। विश्वासात्मक बातों पर नहीं।

न्याय, सत्य व्यवहार, ब्रह्मचर्य, विद्या को ही स्वामी जी ने सर्व प्रिय धर्म बताया है। हिन्दू-जाति के जीवन की ज्योति नष्ट की जाते समय सत्यार्थ प्रकाश ने ही उसे जाति-जीवन की औषध प्रदान की है। शुद्धि करके विधर्मियों को आर्य जाति में मिलाना ऋषि का ही काम था। अब तक सहस्त्रों शुद्धियां हो चुकी हैं। यदि यह गुर महराजा रणजीत सिंह जी के समय में होता तो पंजाब के, काश्मीर के सब नवमुस्लिम हिन्दू बन जाते और पाकिस्तान नहीं बनता। शिवाजी के समय में शुद्धि का नुस्खा ज्ञात हो जाता तो दक्षिण में मुसलमान दिखाई न देता। श्री बाजीराव पेशवा की वह सन्तान जो कि मुस्लिम स्त्री से हुई थी और जो बांदा के नवाब बने थे, आज सब हिन्दू होते। यह शुद्धि रूप और हिन्दुओं के लिए अमृतमयी बूंटी है सत्यार्थ प्रकाश। ●

पशुहिंसा तथा मांस भक्षण

—डा० कृष्णलाल उपाचार्य संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

★

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के उद्घोष के अनुसार महर्षि दयानन्द सभी संसार के मनुष्य के आचार-विचार-आहार से आर्य अर्थात् सज्जन (सभ्य) बना कर उनका उत्कर्ष करना चाहते थे। इसलिए और बातों के साथ-साथ उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास में भक्ष्याभक्ष्य पर भी विचार किया है। निस्सन्देह मनुष्य के आहार का उसके चरित्र पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसी आधार पर श्रीमद्भगवद्गीता (१७।७) में सात्विक, राजसिक एवं तामसिक प्रवृति वाले व्यक्तियों के आहार भी तीन प्रकार के बताये गये हैं—आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रिय--इसी प्रकार पचतंत्र में यह बताया गया है कि मदिरापान करने वाले के चरित्र में सत्य का स्थान नहीं और मांसभक्षण करने वाले व्यक्ति में दया का अवकाश नहीं होता—"मद्यपस्य कुतः सत्य दया मांसाशिनः कुतः"।

मांसाहार के इस चरित्रगत दोष को ध्यान में रखकर ही महर्षि दयानन्द ने कहा है कि "मांस खाने वाले मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है, वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होना भोजनादि करना भक्ष्य है।" हम क्या खाते हैं और कैसे खाते हैं, उसका चरित्र पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। समस्त प्रकृति में हम यह नियम देखते हैं। मांसाहारी पशु हिंस्र तथा भयानक होते हैं, शाकाहारी पशु हिंस्र नहीं होते और मनुष्य के अधिक सहायक होते हैं। अपनी पुष्टि में उन्होंने मनु०(२।१७७) के वचन 'वर्जयेन्मधु मांसं च' को उद्धृत किया है। मांस को अभक्ष्य बताते हुए उन्होंने गणित की सहायता से मांस भक्षण से राष्ट्र को होने वाली आर्थिक हानि की ओर सम्यक् संकेत किया है—"जिसमें उपकारक प्राणियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सस्त्र छः सौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें।" आगे वे विश्लेषण करके बतलाते हैं कि किस प्रकार इतनी संख्या में मनुष्यों को एक गाय से सुख पहुंचता है जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है, उसका मध्य भाग बारह महीने हुए। अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से चौबीस सहस्र नौ सौ साठ मनुष्य एक बार में तृप्त हो सकते हैं। उसके छः बछिया, छः बछड़े होते हैं। उनमें से दो मर भी जायें तो भी दस रहे। उनमें से पांच बछड़ियों के जन्मभर के दूध को मिलाकर एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ मनुष्य तृप्त हो सकते हैं। अब रहे पांच बैल, वे जन्म भर में पांच सहस्र मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला कर तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिला कर एक गाय की एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्य एक बार पालित होते हैं और पीढ़ी पर पीढ़ी बढ़ा कर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है।.... बकरी के दूध से पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस आदमियों का पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा।"

हम जानते हैं कि मांसभक्षण के निमित्त ऐसे भी पालतू पशुओं की हिंसा की जाती है।

इसके विपरीत अनेक विद्वान् धर्म तथा शास्त्र के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि चलिये स्वेच्छा से तो मांसभक्षण नहीं करना चाहिये, परन्तु यज्ञ-प्रसंग में तो पशुहिंसा और मांसभक्षण से हानि नहीं होती ऐसी बात नहीं, अपितु पुण्यलाभ होता है। शास्त्र की उक्ति "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"—सुप्रसिद्ध है ही। इसी प्रकार मनु० (५।२७) का वचन है-सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्॥ सौत्रामणी यज्ञ में मदिरापन करना चाहिये और जिस मांस पर पवित्र जल मन्त्रोच्चारणपूर्वक छिड़का गया है, उस मांस को खाना चाहिये। मनु ने अन्यत्र (५।४४) कहा है कि चराचर जगत् में जिस हिंसा का

विधान वेद द्वारा किया गया है, उसे अहिंसा ही समझना चाहिये ।[1] मनु, (५।५६) के प्रमाण पर ही यह कहा जाता है कि मांसभक्षण मदिरापन और (उन्मुक्त) मैथुन में कोई दोष नहीं है क्योंकि ये तो प्राणियों की सामान्य प्रवृतियां है । हां इसमें कोई संदेह नहीं कि इनसे निवृत्ति बहुत महान् फल प्रदान करती है ।[2] यहां यह ध्यान देने योग्य है कि मनु ने यद्यपि मांसाहार आदि को प्राणियों की सामान्य प्रवृति माना है, परन्तु वह उनसे निवृत्ति का फल अधिक मानता है और इस प्रकार निवृत्ति के लिए ही प्रेरित कर रहा है ।

महर्षि दयानन्द ने एकादश समुल्लास में मनुस्मृति में उपलब्ध ऐसे वेद-विरुद्ध विचारों के विषय में स्पष्ट घोषणा की है कि ऐसे विचार उन तान्त्रिक आदि वाममार्गियों द्वारा अपने मतों को धर्मानुकूल सिद्ध करने के लिए मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों में प्रक्षिप्त किये गये हैं जिनके सम्प्रदाय में मद्य, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन—ये पांच मकार मोक्ष प्रद बताये गये हैं[3]—ये ही वाममार्गी पुर्नजन्म से मुक्ति का एकमात्र उपाय मदिरापान बताते हैं—मदिरापान करता करता गिर पड़े और फिर उठकर मदिरापान करे तो पुनर्जन्म नहीं रहता[4] । इन बातों को कैसे वेदसम्मत कहा जा सकता है ? इसी प्रकार मनुस्मृति जैसे वेदपोषक ग्रन्थ में इस प्रकार के विचारों को प्रक्षिप्त मानना ही उचित प्रतीत होता है।

स्वयं मनुस्मृति (१२.९५) में ऐसे सन्दिग्ध विषयों के प्रसंग में कहा गया है कि जहां भी स्मृतियों में कुछ वेदविरुद्ध वचन हैं उन सबको निष्फल समझना चाहिये । वे सब तमोनिष्ठ अर्थात् अज्ञान-पूर्ण है[5] । इसी प्रकार जाबाल-स्मृति का वचन है कि जहां श्रुति और स्मृति का विरोध हो वहां श्रुति ही अधिक प्रामाणिक मानी जायेगी (श्रुति-स्मृति विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी) । इसीलिए मनुस्मृतिमें मांसाहार और तदर्थ पशुहिंसा की घोर निन्दा की है । मनु के अनुसार जो व्यक्ति अपने सुख की इच्छा से अहिंसक प्राणियों की हिंसा करता है वह न तो जीता हुआ और न ही मर कर कहीं सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त हो पाता है ।[6] इसी प्रकार आगे चलकर मनुस्मृति में यह परामर्श दिया गया है कि मांस की उत्पत्ति (शुक्र-शोणित-विकार) को ध्यान में रखकर तथा उसकी प्राप्ति के लिए की जाने वाली प्राणियों की हिंसा तथा वन्धन का विचार करके मनुष्य को सभी प्रकार के मांसभक्षण से निवृत्त हो जाना चाहिये ।[7]

मनु और सत्यार्थप्रकाश के मांसभक्षणःनिषेधक विचार वस्तुतः श्रुति अथवा वेद पर ही आधारित हैं । ऋग्वेद के एक मन्त्र में पशुहिंसा तथा मांससेवन करने वाले व्यक्ति के लिए कठोर दण्ड का विधान किया गया है—"जो हिंसक वृत्ति का व्यक्ति पुरुष के मांस का सेवन करता है, जो घोड़े या अन्य पशु का मांस खाता है और गौओं की हत्या करके उनके दूध से अन्यों को वंचित करता है, हे अग्निसमान तेजस्वी राजन्, अपने तेज से उनके सिर तक को काट दे ।"[8] इसी प्रकार अथर्ववेद में कहा गया है कि जो कच्चा मांस खाते हैं, जो पुरुषों द्वारा पकाया हुआ मांस खाते हैं, जो गर्भरूप अण्डों का सेवन करते हैं, उन्हें हम यहां से नष्ट करें ।[9]

वस्तुतः 'वैदिकी हिंसा' की भावना परवर्ती सूत्रग्रन्थों में उपलब्ध होती है वहां तथा ब्राह्मणों में भी जहां पशुहिंसा के विचार प्राप्त होते हैं, वस्तुतः पशुओं के लाक्षणिक प्रयोग हैं अथवा उनसे विशेष औषधियां अभिप्रेत हैं । उदाहरणार्थ 'गोभिः श्रीणीत मत्सरम्' का अर्थ "गोओं (के दूध) से सोम को मिश्रित करके पकाओ" है। अथर्ववेद में घोड़ों, गौओं और मच्छरों को क्रमशः अन्न के कण, चावल और धान के छिलके बताया गया है।[10] अन्यत्र गाय को धाना (धान या जौ) तथा बछड़े को तिल कहा है ।[11] इससे जिन स्थलों पर पशुहिंसा प्रतीत होती है, वहां भी पशुहिंसा अभिप्रेत नहीं है ।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध किया है कि मनुष्य के दांत, आंतें इत्यादि अंग मांसाहार के अनुकूल नहीं हैं । मांसाहारी प्राणियों के सभी दांत नोकीले तथा आंतें छोटी होती हैं। मनुष्य के ये दोनों अवयव इसके विपरीत हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में प्रतिपादित पशुहिंसा एवं मांसभक्षण के विरोधी विचार न केवल वेद-सम्मत है, अपितु वैज्ञानिकों द्वारा भी पुष्ट हैं ।

---

१. या वेदविहिता हिंसा नियता तस्मिंश्चराचरे । अहिंसामेव तां विद्यात् . . . ॥
२. न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥
३. मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
एते पञ्च मकारा स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे ॥ (महानिर्वाणतन्त्र)
४. पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत् पतति भूतले ।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ (कुलार्णव तन्त्र)
५. या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फला ज्ञेयास्तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥
६. योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ॥ (मनु० ५-४५)
७. समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ (मनु० ५।४९)
८. यः पौरुषेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्वेन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥
(ऋ० १०-८७-१६)
९. य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥
(अथर्व० ८।६।२३)
१०. अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ।
(अथर्व० ११.३.५)
११. धाना धेनुरभवद् वत्सोऽस्या स्तिलोऽभवत् ।
(अथर्व० १८-४-३२)

सत्यार्थ प्रकाश में चित्रित शासन व्यवस्था

—डा० प्रशान्त कुमार वेदालङ्कार

★

सामान्य धारणा यह है कि समुचित राज्य-व्यवस्था एवं प्रजातन्त्र आदि का क्रियात्मक प्रयोग बहुत पुराना नहीं है। पहले निरंकुश एवं स्वच्छन्द राजाओं का राज्य था। किन्तु यह एक भ्रान्त धारणा है। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका आदि ग्रन्थों में संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदादि चारों वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, मनुस्मृति, शुक्रनीति, विदुर प्रजागर, विदुरनीति तथा महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद्धर्म आदि के आधार पर राज्य व्यवस्था और प्रजातन्त्र का जो स्वरुप निर्धारित वह आज भी उपयोगी हो सकता है। महर्षि दयानन्द ने उदयपुर के किया है, महाराणा, शाहपुराधीश तथा जोधपुर आदि के महाराजाओं को राज्य व्यवस्था एवं प्रजातन्त्र के उसी स्वरूप को अपनाने के लिए प्रेरित किया था। उनके अनेक व्याख्यान राजधर्म से सम्बन्धित ही थे बड़ौदा में राजदीवान माधवराव की प्रार्थना पर स्वामीजी ने राजधर्म पर भी एक व्याख्यान दिया, जिसमें अंग्रेजी न जानने वाले के मुख से राजनीति के गम्भीर सिद्धान्तों व्याख्या सुनकर ऊंचे अधिकारी दंग रह गये। यहाँ हम महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश में प्रतिपादित शासन व्यवस्था का वर्णन करेंगे।

राजा की निरंकुशता का घोर विरोध—

महर्षि दयानन्द राज्य के लिए एक राजा (शासक) का होना आवश्यक समझते थे, किन्तु राजा की निरंकुशता उन्हें असह्य थी। दयानन्द ने शतपथ ब्राह्मण के "राष्ट्रमेव विश्या। हन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः विश्मेव राष्ट्रायाद्यां करोति। तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशु मन्यत इति! शत ३।२।३

इस आधार पर राजाओं की स्वाधीनता का खण्डन करते हुए सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा है, "जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें। जिसलिए अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके प्रजा का नाशक होता है, अर्थात् वह राजा प्रजा को खाए जाता है, इस लिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिए। जैसे सिंह मांसाहारी हृष्ट-पुष्ट पशु कों मारकर खा लेते हैं वैसे स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता। श्रीमान् को लूट खूंट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा।

शासन के संचालन के लिए तीन सभाएं

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के "त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि" इस मंत्र के आधार पर देश की राज्य व्यवस्था के संचालन के लिए तीन सभाओं की स्थापना करने का परामर्श दिया है। वे तीन सभाएं हैं—विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा और राजार्य सभा। इन तीनों सभाओं से प्रजा को विद्या- स्वातन्त्र्य, धर्म एवं धनादि से अलंकृत करने के लिए कहा है। दयानन्द ने उदयपुर के महाराणा के लिए दिनचर्या के नियमों में भी इसी बात पर बल दिया और कहा "इसको (राज्य को) निर्दोष चलाने के लिए एक राज समाज दूसरा विद्या समाज और तीसरा धर्म समाज नियत करे। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी इसी तथ्य को स्थापित करते हुए इन तीन प्रकार की सभा ही को राजा माना है एक मनुष्य को कभी नहीं।

सभाओं के सदस्य और उनका सभापति राजा

इन तीनों सभाओं में अनेक सभ्य अर्थात् सदस्य होने चाहिए। अथर्ववेद १९. ७.५५.६ के 'सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याःसभासदः' के अनुसार जो सभा के योग्य सभासद् हैं वे सभा की व्यवस्था का

पालन किया करें। राजा उन सभासदों में से एक होता है, अपनी योग्यता के आधार पर सभापति बना दिया जाता है।

दयानन्द की स्पष्ट घोषणा है कि 'एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए, किन्तु राजा जो सभापति, तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के अधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।, अकेला राजा ही सब कुछ न हो इसके लिएदूसरा तर्क यह दिया है कि 'विशेष सहाय के बिना जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है, जब ऐसा है तो महान् राज्य कर्म एक से कैसे हो सकता है, इसलिए एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है। कुछ अन्य स्थलों पर सभाओं की सर्वोच्चता प्रतिपादित की है—

(क) जब तक सभासदों की अनुमति न हो तब तक राजा अपने मन से एक भी काम न करे।

(ख) सभा द्वारा निर्दिष्ट कर्म करके सभा द्वारा निर्दिष्ट अधिकार का उपभोग करके धर्म से प्रयुक्त राजा फल का उपभोक्ता होता है।, इसकी पुष्टि मनुस्मृति के कथन से की है — "निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते।"

महर्षि दयानन्द का मत कि "राजकार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों की सभा हो। इनका यही काम है कि जितने जितने व्यक्ति जिस काम में होवें नियमानुसार यथावत् काम करें।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजा सभाओं का मात्र एक सदस्य है। सभा के परामर्श से ही वह राजकार्य सम्पन्न करता है। इन सभाओं का उस पर पूर्ण अंकुश रहता है। ये सभाएं भी स्वतन्त्र अथवा निरंकुश नहीं हैं, इन पर प्रजा का अंकुश रहता है। इस प्रकार प्रजा पर इन सभाओं का और सभाओं पर प्रजा का अंकुश लगाकर इन सभाओं को भी स्वच्छन्द नहीं होने दिया।

सभासदों एवं सभापति का चुनाव

दयानन्द के अनुसार प्रत्येक सभा में न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हो तो तीन विद्वानों की सभा होनी चाहिए। ये सदस्य निर्धारित व्यवस्था का उल्लंघन न करें। दश और तीन दो संख्याएं देने से अभिप्राय यही है कि राज्य के परिमाण, राज्य की जनसंख्या एवं अन्य आवश्यकताओं आदि के आधार पर यह संख्या निर्धारित की जानी चाहिए।

'त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा" मनुस्मृति के इस वचनानुसार सभाओं के सदस्य ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थी तीनों रहें किन्तु आश्रम व्यवस्था के सिद्धान्त के अनुसार अधिकार-सम्पन्न पद केवल २५ से ५०-५५ वर्ष की आयु के व्यक्तियों को ही मिलने चाहिएं। सभापति (राजा) होने का अधिकार ५० वर्ष की आयु तक ही है।

सभासदों की योग्यता—

महाविद्वानों की विद्या सभाधिकारी, धार्मिक विद्वानों की धर्म सभाधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों की राजसभा के सभासदों में निम्नलिखित गुण अपेक्षित हैं:—

१ सभा के सभासद् चारों वेद, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता हों। वेद समग्र जीवन के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण देते हैं। निरुक्त भाषा का समुचित प्रयोग करना सिखाते हैं तथा सधर्मशास्त्र सदस्यों में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक सदस्यों में जागरित करता है, ये तीनों ही तत्व राज्यजीवन के लिये अनिवार्य हैं।

(२) चारों वेदों के विद्वानों से चारों विद्या-दण्डनीति, आन्वीक्षिकी (न्याय विद्या) आत्मविद्या (परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव) और वार्ता का जिन्होंने अध्ययन किया है, वे ही सभा के सभासद हों।

(३) सभासद् वही होने चाहिए जिन्होंने योगाभ्यास द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया हो। जितेन्द्रिय व्यक्ति ही प्रजा को वश में रख सकता है।

जितेन्द्रिय होने के लिए काम से 'दस' और क्रोध से उत्पन्न 'आठ' व्यसनों को छोड़ना आवश्यक है। कामज व्यसन निम्नलिखित हैं—

मृगयाक्षो दिवा स्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥

अर्थात् मृगया खेलना' चौपड़ आदि खेलना, दिन में सोना, काम कथा, परनिन्दा, स्त्रियों का अतिसंग, मादक द्रव्य (मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि गाना बजाना-नाचना, नाच कराना, सुनना और देखना, वृथा इधर उधर घूमते रहना। क्रोधज व्यसन हैं —"पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थ द्वेषणम्।

वग्दण्डजं च पारूष्यं क्रोध जो ऽपि गणोऽष्टकः॥"

अर्थात् चुगली, बलात्कार, डाह, ईर्ष्या (दूसरे की उन्नति से जलना), असूया (दोषों गुण और गुणों में दोष), अर्थदूषण (अधार्मिक कार्यों में धनादि का व्यय), कठोर वचन, बिना अपराध कड़ा दण्ड। स्पष्टतः, चुनाव में व्यवित के इन गुणों को देखना आवश्यक है।

प्रजा को निर्देश है कि विद्या सभा, धर्म सभा और राज सभाओं में मूर्खों को कभी भर्ती न करे किन्तु सदा विद्वान और धार्मिक पुरुषों की स्थापना करे।

इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि भारत के वर्तमान संविधान में सदस्यों की किसी आवश्यक शैक्षणिक अथवा चारित्रिक योग्यता का उल्लेख नहीं है। दयानन्द की कल्पना के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शिक्षा (जिसमें चरित्र की उन्नति विशेषरुप से होगी) प्राप्त करने का अवसर देना आवश्यक है। यदि कोई राज्य व्यक्ति को पूर्ण शिक्षा देने का अवसर दे सका तो सदस्य की शैक्षणिक एवं चारित्रिक योग्यता की शर्त स्वतः अनिवार्य हो जाएगी।

सभापति (राजा) की योग्यता (गुण)

सब सभासदों में जो सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो, सभ्यगण उसको ही राजसभा का पतिरुप मानके सब प्रकार से उन्नति करें।

सभापित में निम्नलिखित गुण होने अपेक्षित हैं—

(१) मनुष्य समुदाय में परम ऐश्वर्य एवं प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभावयुक्त अर्थात् जिसका आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व भव्य हो, जिसका सब आदर करें।

(२) शत्रुओं को जीतने में समर्थ।

(३) चक्रवर्ती राज्य तथा सर्वोत्तम शासन प्रबन्ध में सक्षम।

(४) प्रजाजन जिसके पास जाने में न झिझकें तथा वह सबकी सहायता करने में सक्षम हो, जो सबका मित्र हो सके।

(५) ज्ञान और धनों की जो वृद्धि कर सके।

(६) पक्षपात-रहित एवं पूर्ण विद्याविनय युक्त।

(७) सभापति होने योग्य अर्थात् सारी सभा का संरक्षण एवं संचालन करने में समर्थ—

"इन्द्राऽनिल·" आदि पद्यों से दयानन्द ने सभाध्यक्ष (राजा) के उक्त गुणों का वर्णन आलंकारिक भाषा में किया है—'वह सभेश राजा इन्द्र विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्ता, वायु के समान सबके प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जानने वाला यम, पक्षपात रहित न्यायाधीश के समान व्यवहार वाला, सूर्य के समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक, अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने वाला, वरुण अर्थात् दुष्टों को बाँधने वाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्द देने, वाला धनाध्यक्ष के समान कोशों को पूर्ण करने में समर्थ होवे। सूर्य के समान प्रतापी, जिसे कड़ी दृष्टि से कोई देख न सके और जो अग्नि वायु, सूर्य, सोम, धर्म प्रकाशक, धन-वर्द्धक, दुष्टों का बन्धन-कर्ता एवं अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हो, वही सभाध्यक्ष (सभेश) होने के योग्य है।

राज्य के अन्य घटक

(क)समिति तथा सेना तीन सभायें और उनका एक सभापति निर्वाचित करने के उपरान्त उन सभाओं के अन्तगर्त कुछ समितियाँ तथा सेना आदि का गठन करना चाहिए 'तं सभा च समितिश्च सेना च (अथर्व. १५-२-६-२)

(ख)मन्त्रीमण्डल (कैबिनेट)राजा को सभासदों में से ही सचिव (मन्त्री) रखने का अधिकार है। किन्तु आवश्यकतानुसार यह संख्या घटाई वढ़ाई जा सकती है। **मन्त्रीः**—(१) स्वराज्य अथवा स्वदेश में उत्पन्न (२) वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता (३) शूरवीर (४) उच्च लक्ष्य वाले तथा (५) कुल आदि से सुपरिचित होने चाहिए। मन्त्री-मण्डल से राजा प्रतिदिन निम्नलिखित विषयों पर परामर्श करे (१) सन्धि (किसी राज्य से मित्रता) (२) विग्रह (किसी राज्य से विरोध) (३) स्थान (न मित्रता न विरोध, अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना) (४) समुदय (जब अपना उदय हो तब शत्रु पर आक्रमण) (५) गुप्ति (राज्य सेना व कोश की रक्षा, (६) लब्ध-प्रशमन (अधीनस्थ देश में शान्ति स्थापना)। इस प्रकार यह मन्त्रिमण्डल विशेष रुप से देश की रक्षा व्यवस्था के निमित्त है। राजा को इन विषयों पर सबका विचार अथवा अभिप्राय सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में लग जाना चाहिए।

अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी

(क) मुख्य अधिकारी (१) राजा (२) मुख्य सेनापति (३) मुख्य राज्याधिकारी तथा मुख्य न्यायाधीश हैं। ये सभी वेदादि शास्त्रों में प्रवीण अपने-अपने विषय की सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त धर्मात्मा तथा जितेन्द्रिय होने चाहिएं।

इनके अतिरिक्त राजा जितने मनुष्यों से कार्य सिद्ध हो सके उतने आलस्य रहित, परिश्रमी, बलवान् (स्वस्थ) और कुशल व्यक्तियों को अधिकारी एवं कर्मचारी रूप में नियुक्त करे।

किस प्रकार के व्यक्ति से किस प्रकार के कार्य करवाए जाएं इसका भी निर्देश दयानन्द ने किया है—

(१) इनमें से महान् कार्या कुशल एवं सुपरिचित व्यक्तियों से तथा आन्तरिक कार्य भीरु स्वभाव वाले व्यक्तियों से सम्पन्न कराए।

(२) नित्य घूमने वाले सभापति, अधिकारी आदि के अधीन भिन्न-भिन्न जाति (और स्थानों) के अनेक गुप्तचर रहें। ये गुप्तचर प्रजा के गुण-दोष गुप्तरीति से जानकर दण्ड और प्रतिष्ठा दिलाएं।

(३) प्रजा की रक्षा का अधिकार धार्मिक सुपरिचित कुल के विद्वानों को तथा उनके अधीन कुछ शठ, चोरों और डाकुओं को भी नियुक्त करे ताकि वे प्रजा के दुष्ट कर्म बचाने मेंसहायक हों। यहाँ वस्तुतः राष्ट्र की एक अत्यन्त अनिवार्य समस्या पर प्रकाश डाला गया है। दुष्ट व्यक्ति से यदि योजनाबद्ध राज्योपयोगी कार्य न कराए गए तो वह स्वयं राज्य के लिए सिरदर्द बन जाएगा। दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति पर विश्वास करके उस पर कोई उत्तरदायित्व-पूर्ण काम सौपा जा सकता है। आजकल भी जेल आदि में हत्या के कैदियों को नम्बरदार आदि बनाकर उनसे अन्य कैदियों पर नियन्त्रण आदि रखने का कार्य सफलतापूर्वक लिया जाता है। इन लोगों से जेल से बाहर भी दुष्ट एवं अपराधी व्यक्तियों पर नजर रखने, इन्हें ऐसा करने से रोकने एवं पकड़ने आदि में सहायता ली जा सकती है।

दूत (राज्य दूत)

दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था में दूत का विशेष स्थान है। जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को तोड़-फोड़ दे वह दूत है। दूत शत्रुओं में फूट डालने में सक्षम होता है। इनकी सहायता से राजा विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जानकर कुशलता-पूर्वक राज्य रक्षा में समर्थ सिद्ध होता है। दूत देश और जनता का हितैषी हो, न कि अपने पद के आधार पर स्वार्थ-सिद्धि का प्रयत्न करने वाला हो।

कार्य विभाजन

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द राज्य-कार्य के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे—

(क) तीनों सभाएं अपने-अपने कार्य में स्वतन्त्र हैं अर्थात् विद्यासभा राष्ट्र की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था, राजार्यसभा राष्ट्र की सम्पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था तथा धर्मार्य- सभा देश की धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था को देखती है और साथ ही मिलकर राज्य की उन्नति के लिए अनेक प्रकार के परामर्श देती है तथा नियम आदि बनाती है। उनमें समयानुकूल विधान बनाने के अधिकार हैं।

(ख) राजा सभा द्वारा निर्मित विधानों को क्रियान्वित करता है। इस प्रकार वह कार्यपालिका का अध्यक्ष है। . . . . न्यायाधीश द्वारा निर्दिष्ट दण्ड आदि को भी राजा ही देता है। साथ ही राजा सेना का भी सर्वोपरि अध्यक्ष होता है। दण्ड को आन्तरिक और बाह्य आक्रमणों से वही बचाता है। उसकी दिनचर्या लिखते हुए वे कहते हैं कि 'मन्त्रियों से विचार कर सभा में जा सब भृत्य और सेनाध्यक्षों के साथ मिल उनको हर्षितकर नाना प्रकार की व्यूह शिक्षा अर्थात कवायद कराकर सब घोड़े, हाथी, गाय आदि स्थान, शस्त्र अस्त्र, का कोश तथा वैद्यालय, धन के कोशों को देख सब पर दृष्टि नित्यप्रति देकर जो उनमें खोट हो उनको निकाले।' इनसे राजा का कार्य आसान होता है। राज्य का सम्पूर्ण कार्य उसी क अधीन है।

(ग) अमात्य— न्यायाधीश बनकर दण्डाधिकार रखता है। दण्ड में विनय अर्थात जिससे अन्याय रुप दण्ड न हो सके ऐसी व्यवस्था करता है। इस प्रकार अमात्य न्यायपालिका का अध्यक्ष है।

(घ) दूत—आधुनिक शब्दावली में दूत परराष्ट्र- मन्त्रालय का सम्पूर्ण कार्य देखता है। राष्ट्र से सन्धि तथा विरोध करने का परामर्श वही देता है।

(ङ) शासन व्यवस्था तथा उनके लिए नियुक्त अधिकारी (ग्राम-राज्य)—दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शासन-व्यवस्था में किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्ति -समूह के शक्ति- सम्पन्न होने एवं अपनी मनमानी करने का कोई स्थान नहीं है। देश के विविध भागों में सुचारु रुप से शासन चलाने के लिए ग्राम-राज्य एवं ग्राम पंचायतों की योजना को तथा नगर-व्यवस्था को निम्नलिखित प्रकार से संचालित करना चाहिए—(१) दो, तीन, पाँच और दस ग्रामों के बीच में एक राजस्थान रखके जिसमें यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरुषों को रखकर सब राज्यों के कार्यों को पूर्ण करे।

(२) एक एक ग्राम में एक एक प्रधान पुरुप को रखे, उन्हीं दस ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं बीस ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा, उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पाँचवा पुरुष रखे। अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राम में एक पटवारी, उन्हीं दस ग्रामों में एक थाना और दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन

पाँच थानों पर एक तहसील और दस तहसीलों पर एक जिला नियत किया है। यह वही मनु आदि धर्मशास्त्र से राजनीति का प्रकार है। जैसा कि मनुस्मृति का वचन है—

"ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा ।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेवच ।।"

(३) एक एक ग्रामों का पति ग्रामों में नित्यप्रति जो-जो दोष उत्पन्न हों, उन-उनको गुप्तता से दस ग्राम के पति को विदित कर दे और वह दस ग्रामाधिपति उसी प्रकार बीस ग्राम के स्वामी को दस ग्रामों का वर्तमान नित्यप्रति जना देवे। और बीस ग्रामों का अधिपति बीस ग्रामों के वर्तमान शतग्रामाधिपति को नित्यप्रति निवेदन करे वैसे सौ-सौ ग्रामों के पति आप सहस्राधिपति को सौ-सौ ग्रामों के वर्तमान को प्रतिदिन जनाया करें। और बीस-बीस ग्राम के पाँच अधिपति सौ-सौ ग्राम के अध्यक्ष को और वे सहस्र-सहस्र के दस अधिपति दस सहस्र के अधिपति को और लक्ष ग्रामों की राजसभा को प्रतिदिन का वर्तमान जनाया करें।

इस सम्पूर्ण वर्णन से दो बातें स्पष्ट हैं- (१) ग्रामपति द्वारा अपने से अधिक ग्रामों के पति को केवल दोष बताने का आदेश दिया गया है। अर्थात् जिन दोषों को वह स्वयं नहीं सुलझा पा रहा उसकी सूचना ऊपर अवश्य दे दे अथवा परामर्श आदि लेकर उस दोष को दूर करने का प्रयत्न करें। (२) दोषों की सूचना नित्यप्रति दिया करें। इससे नियुक्त अधिकारी को अपने कर्तव्य के प्रति सजगता का बोध होता है।

महात्मा गांधी ने दयानन्द से बहुत बाद में ग्राम-राज्य की कल्पना की। यदि हम दयानन्द द्वारा बताये गये ग्रामराज्य की कल्पना को साकार करने का प्रयत्न करें तो हमारे देश का प्रजातन्त्र अत्यन्त सुदृढ़ हो जायगा, और अनेक समस्याओं का स्वतः समाधान हो जायगा। यहाँ राजपुरुषों की नियुक्ति की बात की गयी है। आजकल की परिस्थितियों के अनुसार इनका चुनाव किया जा सकता है।

(३) ग्रामपतियों द्वारा बताये गये दोषों के निवारण के लिए दयानन्द का सुझाव है कि एक एक, दस दस, सहस्त्र ग्रामों पर दो सभापति हों, जिनमें एक राजसभा में और दूसरा आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषों के कामों को सदा घूमकर देखते रहें।

(४) ग्राम व्यवस्था के अतिरिक्त नगर-व्यवस्था के लिए बड़े-बड़े नगरों में एक-एक विचार करने वाली सभा क़ा सुन्दर उच्च और विशाल और चन्द्रमा सा उज्जवल घर बनावें। उसमें बड़े बड़े विद्या वृद्धराज और प्रजा की उन्नति के लिए नियम बनाएँ।

राज्य अथवा राजा के कार्य

महर्षि दयानन्द के अनुसार राज्य के लिए आवश्यक वस्तुऐं निम्नलिखित हैं।—(१) शस्त्रास्त्र (२) धन धान्य (३) वाहन (४) ब्राह्मण (पढ़ाने और उपदेश करने वाले) (५) शिल्पी (यंत्र नाना प्रकार की कला) (६) चारा, घास, जल (७) सभी ऋतुओं के अनुकूल वृक्ष, पुष्प आदि।

दयानन्द के अनुसार जैसे प्राणियों के प्राण शरीरों को कृशित करने से क्षीण हो जाते हैं वैसे प्रजाओं को दुर्बल करने से राजाओं के प्राण अर्थात् बलादि बन्धु सहित नष्ट हो जाते हैं। मनुस्मृति के आधार पर उन्होंने कहा कि राजा पर्वत के शिखर, जंगल अथवा एकान्त घर में मंत्री के साथ गुप्त मन्त्रणा करे। परोपकार के लिए अच्छे विचार को गुप्त रखने वाला धनहीन होने पर भी राज्य करने में समर्थ होता है।

महर्षि दयानन्द ने राजा अथवा राज्य के कर्तव्यों-कर्मों का जो विभिन्न स्थानों पर वर्णन किया है उसके आधार पर राज्य के निम्नलिखित कर्तव्य (कार्य) निर्धारित किए जा सकते हैं (१) ज्ञान की वृद्धि (समुचित शिक्षा व्यवस्था एवं दुष्ट व्यसनों का नाश) (२) क्षात्रधर्म का विकास (राज्य की आंतरिक एवं बाह्य शत्रुओं से रक्षा) (३) धन धान्य की वृद्धि (निर्धनता और रोग की परिसमाप्ति) (४) सुदृढ़ न्याय व्यवस्था (दुष्टता एवं सामाजिक असमानता की परिसमाप्ति)।

राष्ट्र में इन चारों ही तत्वों की समान उन्नति की आवश्यकता है। इसीलिए आगे चलकर सत्यार्थ-प्रकाश में स्वामी जी ने लिखा "जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाये जायें और शरीर का बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान पुरुष ज्ञानी और सैंकड़ों विद्वानों को जीत सकता है, और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाए आत्मा का नहीं, तो भी राज्य-पालन की उत्तम व्यवस्था बिना विद्या के कभी नहीं ही सकती। बिना व्यवस्था के सब आपस में ही फूट टूट विरोध लड़ाई झगड़ा करके नष्ट भ्रष्ट हो जाए। इसलिए सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिए। जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार, व्याभिचार और अति विषयासक्ति है वैसा और कोई नहीं है। विशेषत: क्षत्रियों को दृढ़ाङ्ग और बलयुक्त होना चाहिए, क्योंकि जब वे विषयासक्त होंगे तो राज्य धर्म ही नष्ट हो जायगा।

जो राजा मोह से अपने राज्य को दुर्बल करता है, (इन तत्वों में से किसी एक की भी प्रगति नहीं करता) वह राज्य अपने बन्धु सहित जीने से पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए राजा और राजसभा राजकार्य की सिद्धि के लिए ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राजकार्य यथावत् सिद्ध हों। जो राजा राज्यपालन में सब प्रकार तत्पर रहता है, उसका सुख सदा बढ़ता है। राजा को चाहिए कि वह अपने आत्मा वह शरीर को राजा व अधिकारी न समझे किन्तु राजनीति ही को राजा और राज्याधिकारी कहे।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शासन- व्यवस्था के वर्णन के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।—

(१) शासन-व्यवस्था का मुख्य आधार विकेन्द्रीकरण है। इसी विकेन्द्रीकरण के ही आधार पर सम्पूर्ण शासन-भार किसी एक व्यक्ति अथवा एक ही संस्था के अधीन न कर तीन सभाओं—विद्यार्य सभा (शिक्षा के लिए) राजार्य सभा (राज्य कार्य, रक्षा एवं धन के लिए) तथा धर्मार्य सभा (धर्म एवं सामाजिक समानता के लिए) के अधीन किया हैं। ये तीनों मिलकर जहां सम्पूर्ण राजकार्य के लिए उत्तरदायी होंगीं वहाँ ये अपने अपने विषय में सर्वथा स्वतन्त्रता से कार्य करेंगीं। राजा (जो कि केवल सभापति है) केवल उन सभाओं द्वारा किए गए निर्णयों को क्रियान्वित करेगा। इस प्रकार कार्य-शक्ति प्रधान मंत्री के पास न होकर सभापति के पास होगी। आधुनिक ससंदीय प्रणाली में एक ही सभा (लोक अथवा राज्य सभा) शिक्षा, वित्त, रक्षा आदि सभी कामों को सम्पन्न कर लेती है। एक ही सभा अथवा उसके सभासद् सभी विषयों के विशेषज्ञ नहीं हो सकते। अतः उन सभासदों को तीन भागों में विभक्त कर, उनको जिस कार्य में रुचि हो उन तीनों ही सभाओं को अपने विषय का पूर्ण अधिकार देकर कार्य का विभाजन करना चाहिए। इन सभाओं के अन्तर्गत भी कुछ समितियाँ बनानी अपेक्षित हैं।

(२) इन तीनों ही सभाओं के सभ्यों (सभासदों अथवा सदस्यों) का प्रजा चुनाव करती है। चुनाव में यह स्पष्ट होना चाहिए कि कौन सा उम्मीदवार किस विषय का विशेषज्ञ है, प्रजा प्रत्येक सभा में उस विषय के विशेषज्ञ को ही भेजेगी। ये तीनों सभाएं पृथक-पृथक रुप से अपने अध्यक्ष का चुनाव भी करेंगी तथा तीनों मिलकर एक सभापति रुप राजा का चुनाव भी करेंगी।

(३) महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शासन व्यवस्था के वर्णन से यह संकेत मिलता है कि देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग राज्य हों। उन्होंने एक राज्य की एक सभा में १० सदस्यों का वर्णन किया है' जिससे सूचित होता है कि वे वर्तमान प्रदेशों से भी छोटे राज्यों की कल्पना करते थे। इन अलग अलग राज्यों में अलग अलग राज्य व्यवस्था एवं राजा (सभापति) आदि हों। उन सब राज्यों अथवा राजाओं के उपर एक चक्रवर्ती राज्य अथवा राजा होना चाहिए। चक्रवर्ती राजा सदा इस बात को देखे कि कहीं कोई राज्य प्रजा विरोधी कार्य तो नहीं कर रहा, परन्तु उसे राज्य की आन्तरिक नीतियों, प्रगति के तरीकों आदि में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं।

जिस प्रकार आज हमारे देश में एक केन्द्र है और अनेक प्रदेश है, दयानन्द की शब्दावली में केन्द्र चक्रवर्ती राज्य हैं और प्रधान मन्त्री उनका राजा है। प्रदेश अनेक राज्य हैं और उनके मुख्यमन्त्री उनके राजा हैं। महर्षि दयानन्द चाहते हैं कि केन्द्र के शासक यह तो देखें कि प्रदेशों में कहीं प्रजा के प्रति अन्याय तो नहीं हो रहा? पर उसे प्रदेशों की शासन-व्यवस्था में अनावश्यक रूप से दखल देने का अधिकार नहीं है। हर राज्य केन्द्र-सरकार की सहायता के बिना भी स्वतन्त्र रुप से उन्नति कर सके यह स्वामी दयानन्द का आशय है। घोर संकट की स्थिति में तो केन्द्र-सरकार राज्यों को सहायता करेगी ही।

(४) राज्यों की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था भी दयानन्द केवल राज्य के एकाधिकार में रखने के पक्ष नहीं थे। इसके लिए उन्होंने प्रायः राज्य व ग्राम पंचायतों का सुझाव दिया है इस प्रकार उन्होंने सत्ता को अधिक से अधिक फैलाया है।

(५) इन सभाओं में ब्रह्मचारी (विद्यार्थी)गृहस्थी (२५-५० वर्ष के) एवं वानप्रस्थी (५० से ७५वर्ष के) तीनों प्रकार के लोगों का प्रतिनिधित्व कहा गया है। केवल वही वानप्रस्थी इन सभाओं के सदस्य होंगे, जो कि गृहस्थावस्था में भी सक्रिय रूप से इन सभाओं-में कार्य करते रहे थे। विभिन्न पदों पर (राजा पद पर भी) केवल ५० वर्ष तक की आयु तक व्यक्ति ही रह सकेगा। दयानन्द अपने प्रजातन्त्र में निरंकुश शासन के सदा विरोधी रहे हैं।

(६) यहाँ इस बात का भी उल्लेख आवश्यक है कि महर्षि दयानन्द की कल्पना में विश्व सरकार या विश्व शासन-व्यवस्था की स्पष्ट कल्पना थी। वे लिखते हैं— '- - - और वे सब राजसभा अर्थात् चक्रवर्ती महाराज सभा में सब भूगोल का वर्तमान जनाया करें।'

भारतीय संविधान पर सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव

श्री ब्रह्मचारी आर्य नरेश, वैदिक प्रवक्ता श्रीमद्दयानन्द मठ, रोहतक

अज्ञान से पीड़ित एवं पाखण्ड से शोषित विश्व एवं भारतीय जनता के कल्याणार्थ आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व सत्यार्थप्रकाश रूपी अमर ग्रन्थ की रचना की। अज्ञान पीड़ित लोगों को पाखण्ड के कुचक्र से बचाने के लिये वेद शास्त्रादि लगभग तीन हजार ग्रन्थों की सत्यशिक्षाओं पर आधारित इस सत्यार्थप्रकाश रूपी संजीवनी बूटी ने लोगों को एक नव जीवन प्रदान किया।

जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती के दयालु हृदय ने जब दुःखों से पीड़ित पुत्रतुल्य आर्य सन्तानों की करुणामयी पुकार सुनी तो उनकी रातों की नींद हराम हो गई। सच्ची माता के तुल्य उन पीड़ित पुत्रों को उन्होंने एक अपनी दया एवं ज्ञान रूपी पवित्र गोदी में उठा लिया और तर्क रूपी स्तन से छन-छन कर निकले हुए सत्य ज्ञान-रूपी शुद्ध दुग्ध का पान करवाया। तर्क ताप से शोधित इस सत्यज्ञान को पाकर सदियों से कुण्ठित भारतीय सन्तान के जर-जर शरीर में पुनः उन्नति के लक्षण दिखाई देने लगे।

परमदयालु देव दयानन्द ने जब वेदाज्ञानुसार ढोंगी-पाखण्डियों के जाल से बचाकर ज्ञान की लोरियों से भारतीय सन्तानों को पालना शुरू किया तो भारत के नष्ट प्रायः वैदिक वृक्ष में पुनः हरयाली झलकने लगीं। सच्ची माँ का संरक्षण पाकर जादू-टोना, बाल-विवाह, बहु-विवाह, अनमेल-विवाह, स्त्री-अशिक्षा, स्त्री-निन्दा, तथा छूआ-छात रूपी शत्रु समाज से छिन्न-भिन्न होने लगे। पोपों की पोलें खुलने लगी और उनके प्रति जनता का सब विश्वास काफूर हो गया। पाप पर आश्रित पाखण्डियों को अपने पेट के लाले पड़ गये और उन्होंने अपनी दुकानों को बचाने के लिए महर्षि दयानन्द पर कीचड़ उछालना शुरू किया। कोई कहता था यह ईसामसीह का चेला है तो कोई कहता था कि यह नास्तिक है।

परम परोपकारी दयालु दयानन्द ने विचारा कि जब तक मेरा जीवन है तब तक तो यह भारतीय सन्तानें इन चाण्डालों से बची रहेंगी, परन्तु पश्चात् इनका बचा रहना स्यात् सम्भव न हो सके- अतः ऐसा विचार कर के उस देव दयानन्द सरस्वती ने एक अतीव विदुषी माता के तुल्य अपने पश्चात् भी भविष्य में भारतीय सन्तानों के संरक्षणार्थ सत्यानन्द रूपी पवित्र दुग्ध को सत्यार्थप्रकाशमय पावन पात्र में चौदह आवरणों के नीचे सदा के लिये सुरक्षित रख दिया।

न जाने कितने ही भूले-भटके लोगों ने सत्यार्थ प्रकाश रूपी अमृत का पान करके अपने जीवन का सुधार किया। घोर नास्तिक गुरुदत्त एम० ए० ने धर्म को स्वीकार किया, मांसाहारी मुन्शीराम वकील ने इसे पढ़कर सदा के लिए मांस खाना छोड दिया और स्वर्गीय स्वामी सर्वदानन्द आदि जैसे अनेकों घोर पौराणिक साधुओं ने अपने जीवन को पावन पवित्र किया। इस लेख का लेखक भी तृतीय समुल्लास को पढ़ कर इतना प्रभावित हुआ कि कालेज के पश्चात् पुनः गुरुकुल में पढ़ने लगा। जिस प्रकार से प्रकाश पुञ्ज आदित्य के द्वारा संसार भर का दूषित जल आकर्षित होकर वर्षा रूपी अमृत के रूप में बरसता है ठीक इसी प्रकार से कितना भी मुंशीराम जैसा दूषित जीवन जब सत्यार्थ-प्रकाश रूपी अमृतधारा का पान करता है तो उसका जीवन वर्षा जल के तुल्य शुद्ध, निर्मल एवं मीठा हो जाता है। हमें अनेकों व्यक्ति भारत में प्रचार करते करते मिलते हैं, जो कि ये कहा करते हैं कि यदि हमें सत्यार्थ प्रकाश न मिलता तो निश्चित् हम शराब, मांस, जुआ आदि में फंस कर समाज में इस प्रकार मान युक्त उच्च अवस्था में न होते।

राष्ट्र की वास्तविक प्रगति का मूल व्यक्ति की शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति ही है। परन्तु इन तीनों की उन्नति का मूल कारण ज्ञान है, अर्थात् बुद्धि में सत्य का प्रकाश होना। यथा बुद्धि रहित एक पागल व्यक्ति भला ही वह कितना भी बलिष्ठ धनाढ्य, ऊंचे परिवार वाला क्यों न हो उसके लिए सब सुख बेकार है। बसे ही ज्ञान रहित व्यक्ति की भी कीमत नहीं। शरीर में आंख के बिना काम चल सकता है, कानों के बिना काम चल सकता पैरों के बिना काम चल सकता है, वाणी के न होने पर काम

चल सकता है पर बुद्धि विकृत होने पर कुछ भी कार्य नहीं चल सकता। इस बात को गम्भीरता से विचार कर महर्षि स्वामी दयानन्द ने राष्ट्र एवं सरकार के कल्याण के लिए वेद के आधार पर सत्यज्ञान का प्रकाश स्वरचित ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में किया।

सत्यज्ञान की आधारशिला तर्क है। जिस प्रकार किसी भी ऊंची से ऊंची मीनार को गिराने के लिए उसके ऊपर चढ़ कर उसके शिखरों को गिराने की आवश्यकता नहीं अपितु उस गगनचुम्बी मीनार की आधार शिला (नींव) को यदि नीचे से ही निकाल दिया जाये तो वह मीनार स्वयमेव भूमिसात हो जायेगी। ठीक उसी प्रकार से ही सत्यधर्म अर्थात् न्याययुक्त सार्वजनिक मान्यताओं की रक्षा के लिए अत्यावश्यक है कि उसकी आधारशिला की रक्षा करें। तर्क का अभिप्राय यह है कि हम किसी भी बात को यूं ही न स्वीकार करें। अपितु उसके कारण कार्य तथा लक्षण को भी ध्यान रखे। उसकी कुछ कसौटियां है जो इस प्रकार से हैं —

१. सत्य प्रत्येक का हितकारी होगा यथा प्रेम करना मीठा बोलना।

२. सत्य तीनों कालों में दो और चार के समान सब का एक ही जैसा होगा।

३. काल देश तथा जाति पाति से दूर होगा।

४. वेद के अनुकल होगा–यथा निराकार सर्वव्यापक ईश्वर की पूजा।

५. सृष्टि-क्रम के विरोध में न होगा–जैसे बिना पिता के पुत्र न होना।

६. वह प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों द्वारा सिद्ध होगा।

७. अपनी आत्मा की पवित्रता के अनुकूल होगा, यथा अपने लिए सुख चाहना वैसा ही दूसरों के लिए भी चाहना।

८. धार्मिक विद्वान् सत्यवादी निष्कपट व्यक्ति के उपदेश के अनुकूल होगा।

जब महर्षि दयानन्द सरस्वती ने तर्क के इन तीखे तीरों के द्वारा पाखण्ड के भवनों को गिराना शुरू किया तो पाखण्डियों में भगदड़ मच गई। उन्होंने ग्रन्थों को सुधारना शुरू किया। अब बाईबल में यह नहीं मिलेगा कि ईसामसीह ने अन्धों को आंख और लूलों को पैर दिये अपितु यह मिलता है कि ज्ञान रूपी आँखों से रहित अन्धों को ज्ञान की आँखें दी और सत्संग में न आने वाले लूलों को धर्म मार्ग में गति रूपी टागें दीं। इसी प्रकार जब "चौथे दिन सूर्य बना" के ऊपर तर्क किया कि सूर्य द्वारा पृथ्वी के चारों ओर घूमे बिना चौथा दिन कैसे बना तो उन लोगों ने यह अनुवाद किया कि चौथे दिन नहीं अपितु चोथे दर्जे पर सूर्य बना स्वीकार किया और जैनी आदि लोगों ने भी अपने मन्तव्यों को बदलना शुरू किया।

संविधान में ऋषि दयानन्द की छाप

सत्यार्थप्रकाश लिखने के लगभग ७२ वर्ष पश्चात् भारतीय संविधान की रचना हुई। जिन सत्य सिद्धान्तों को केन्द्र बनाकर महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज द्वारा कार्य करना प्रारम्भ किया। उसका भारतीय समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। जिसका फल यह

"एक मौलिक कर्त्तव्य"

यह प्रत्येक भारतीय नागरिक का मौलिक कर्त्तव्य होगा कि वह अपने अन्दर विचारने का वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवता की भावना और जांच-पड़ताल तथा सुधार का मादा पैदा करें। भा० सं० ४२/ए/५१ए/६

हुआ महर्षि दयानन्द के पश्चात् आने वाले गांधी, नेहरू राजेन्द्रप्रसाद तथा अम्बेडकर जैसे सभी राष्ट्र नेताओं को सत्यार्थप्रकाश रूपी चुम्बक की ओर स्वतः खिंचना ही पड़ा।

आज भारत में संविधानाज्ञा के अनुसार —

१. २२ वर्ष से कम आयु का लड़का तथा १८ वर्ष से कम आयु की लड़की विवाह नहीं करा सकेंगे।

२- कोई व्यक्ति एक से अधिक विवाह नहीं करा सकता।

३. स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे।

४. राष्ट्र में सभी नागरिक समान होंगे छूआछूत द्वारा दूसरों को छोटा समझने वाला जेल के सींखचों में बन्द हो सकेगा।

५. कोई व्यक्ति किसी को गरीब जानकर शोषण करेगा तो दण्ड का भागीदार होगा। यह सब १, २, ३, ४, धारा में सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास के अनुसार है।

६. सब बच्चों को समान रूप से पढ़ने तथा उन्नति होने के अधिकार मिलेंगे यह बात तीसरे समुल्लास के अनुसार है।

७. दहेज प्रथा पर प्रतिबन्ध इस बात को महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में तथा पत्र व्यवहार में राजा को शिक्षा दी थी कि विवाह शादियों में व्यर्थ खर्च न करें। — (पत्र विज्ञापन रामलाल कपूर ट्रस्ट)

८. गर्भ काल में माता के स्वास्थ्य की रक्षा तथा बच्चों की सुरक्षा होगी— द्वि० समुल्लास

९. हिंसा का परित्याग तथा शराब पर पूर्ण पाबन्दी होगी। सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास (संविधान धारा ४२॥५१ए॥६)

१०. गरीबों को मुफ्त न्याय की व्यवस्था का प्रबन्ध होगा (सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण)

११. राष्ट्र भाषा हिन्दी होगी जो कि सत्यार्थप्रकाश की भाषा है। इस बात को संविधान बनने से ७२ वर्ष पूर्व ही देव दयानन्द जान चुके थे। अतः उन्होंने अपनी भाषा गुजराती होते हुए भी सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में ही लिखा।

१२. अपनी ही प्राचीन संस्कृति अपने देश की उन्नति का मूल कारण हो सकती है। (सत्यार्थप्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः) इसी के अनुसार ही संविधान की धारा ४२।५१-ए७ है। इसमें लिखा है कि यह प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य होगा कि वह प्राचीन संस्कृति की देनों (वर्णाश्रम, गोपालन, शाकाहार, ईश, वन्दना, ब्रह्मचर्यपालन आदि) को सुरक्षित रखें।

१३. धारा ४८ जिसमें गौरक्षा की बात है वह भी सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास के अनुसार है।

१४. धारा ४२।५१ ए।७ में प्राचीन वैदिक संस्कृति के अनुसार ही देव दयानन्द ने सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश की रचना की जो कि प्राचीन वेदज्ञान के अनुसार है। और इसके विपरीत वेद को मनुष्यकृत कहना पृथ्वी को चपटी लिखकर उसके चारों ओर सूर्य को घुमाना तथा ईश्वर को आकार वाला मानकर एक देशीय जानना आदि असत्य सिद्धान्तों का विरोध सत्यार्थप्रकाशक ७वें ८वें तथा ११ वें समुल्लास में किया है।

१५. संविधान की प्रजातान्त्रिक चुनाव प्रणाली सत्यार्थ प्रकाश के ६ठे सम्मुल्लास का बिगड़ा हुआ ही रूप है।

१६. जब सब से अन्त में हम संविधान की धारा ४२।४ ए५१ ए।६ पर विचार करते हैं। यह मौलिक कर्तव्यों में लिखी गई है। धारा इस प्रकार है—

यह प्रत्येक भारतीय नागरिक का मौलिक कर्तव्य होगा कि वह अपने अन्दर विचारने का वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानवता की भावना और जाँच पड़ताल तथा सुधार का मादा पैदा करे। स्पष्ट है कि जांच पड़ताल अर्थात् तर्क तथा सुधार (खण्डन मन्डन) की भावना पैदा करे जिससे जादू टोना जीव-बलि तथा पाखण्डी साधुओं से बचा जा सके।

महर्षि दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश इसी तर्क पर खड़ा है जिसकी इस धारा में चर्चा है। अधिकतर पाखण्डवादी लोग महर्षि की खण्डन-मण्डन प्रणाली पर आक्षेप करते हैं परन्तु आज तक इनमें से एक भी व्यक्ति महर्षि दयानन्द की Inguiry तथाReform को गलत सिद्ध नही कर सका। इसी अनुसंधान की भावना को लेकर देवदयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ११ वें, १२वें, १३वें तथा १४ वें समुल्लास की स्थापना की थी। जिससे कि पाखण्ड का अन्त हो कर राष्ट्र, विद्या, सुशिक्षा एवं विज्ञान युक्त बन कर शीघ्र उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने वाला व्यक्ति इस धारा को देखकर सहज कह सकता है कि यह संविधान की उपरोक्त धारा साक्षात् सत्यार्थप्रकाश की ही देन है। सत्यार्थप्रकाश के कर्त्ता महावैज्ञानिक दयानन्द सरस्वती लिखते हैं:—

(क) मंगल, शुक्र तथा शनि आदि ग्रह जड़ होने से किसी व्यक्ति पर नहीं चढ़ते। ऐसी बातें करने वाला महाधूर्त है। टेवा-पत्री आदि भी सब झूठ है क्योंकि यदि लिखा ही हुआ है तो परिश्रम की आवश्यकता नही और न ही इसके अनुसार कुछ होता है। पुरुषार्थ ही उन्नति का मूल और प्रारब्ध से बड़ा है। (स० प्र० द्वितीय स० एवं स्व० प्रकाश)

(ख) शंका - यज्ञ करना पाखण्ड है क्योंकि इसमें वृथा घी फूंक कर राख किया जाता है। अच्छा है कोई व्यक्ति खाकर कुछ काम करने योग्य हो सके।

समाधान यह पाखण्ड नहीं क्योकि जलने से घृत का नाश नहीं होता, यह विज्ञान का नियम है—

विज्ञान के अनुसार न किसी पदार्थ के मूल का नाश होता हैं न ही जन्म। घृत सूक्ष्म होकर कई गुणा बढ़ता है और वायु में मिल जाता है। जैसे अग्नि पर हींग छोकने से अनेक गुणा बढ़कर सारे मुहल्ले को बता देती है।

(ग) वेदों को कोई मनुष्य नहीं बना सकता क्योंकि सृष्टि के आदि में बिना ईश्वर के कोई गुरु न था और गुरु के अभाव में किसी मूर्ख द्वारा ऐसे ग्रन्थ बनाना असम्भव है।

—सत्यार्थप्रकाश सप्तम समु०

(घ) आदि सृष्टि में प्राणियों की युवका सृष्टि ही हुई। क्योंकि बच्चे होते तो पालना कौन करता और बूढ़े होते तो सन्तान के अयोग्य होते।

(ङ) पृथ्वी गोल है न कि चपटी। क्योंकि कोई भी घूमने वाली वस्तु चपटी नहीं हो सकती, तथा सूर्य इसके चारों ओर नहीं घूमता अपितु यह सूर्य के चारों और घूमती है क्योंकि यदि लाखों गुणा बड़ा सूर्य इसके चारों ओर घूमे तो सैकड़ों वर्ष लगें।

—स० प्र० अष्टम एवं द्वादश समुल्लास

(च) जड़ होने से मूर्ति कुछ खा-पी नहीं सकती और यदि खाती है तो अवश्य वहां कोई धूर्त पीछे छिपा है।

—एकादश समुल्लास

(छ) सच्ची मूर्ति पूजा माता, पिता, पति, पत्नि, तथा अतिथि की यथायोग्य सेवा द्वारा आदर सत्कार करकै उपदेश लेना है, जिससे जीवन की रक्षा होती है। जड़ ग्रन्थ तथा मूर्तियां जो अपना भी कुछ नहीं सुधार सकते दूसरों का क्या सुधारेंगे।

— स० प्र० एकादश समुल्लास

(ज) पशुओं तथा मनुष्यों को मूर्तियों तथा यज्ञों के नाम पर बलि देना पाप एवं मूर्खता पूर्ण है। यदि यह पशु स्वर्ग को पाते हैं तो इन पण्डे-पुजारियों को सपरिवार होम कर स्वर्ग को भेजना चाहिये।

—स० प्र० ११, १२ समु०

(झ) यदि पृथ्वी बैल के सीगों पर खड़ी है तो क्या बैल पोपों के सिर पर खड़ा है?

—अष्टम समु०

(ञ) "जो जैन धर्म से इतर हैं वे पैदा क्यों हो गये, और यदि हो गये तो इनको शीघ्र ही मर जाना चाहिए।" यह शिक्षा घोरमानव जाति घातक मूर्खों की तो हो सकती है किसी सज्जन की नहीं।

—जैनियो का पोलखाता १२वां समुल्लास

(ट) जो यह कहते हैं कि चोर, व्याभिचारी तथा कातिल आदि को हाथ, पांव, गर्दन काटना आदि कठोर दण्ड न देना चाहिये, यह पाप है। वे महामूर्ख न्याय को नहीं समझते। कठोर दण्ड के अभाव में भय रहित होकर अनेकों पाप करेगें जिससे अनेकों का थोड़ा-थोड़ा दण्ड उस एक के अधिक से भी हजारों गुणा अधिक होगा और जनता का दु:ख भी बढ़ेगा। —स० प्र० ६ समुल्लास

(ठ) यदि चौथे दिन सूर्य बना तो बिना सूर्यबने चार दिनों की गिनती कैसे हुई ? बिना बाप के बेटा नहीं हो सकता। क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता। —स० प्र० १३ समु०

(ड) बछड़ों का मांस मांगने वाला ईश्वर नहीं ईसाईयों का साक्षात् राक्षस है, क्योंकि बिना दु:ख और हिंसा के मांस नही मिलता और अकारण हिंसा करना महापाप है। —स० प्र० १३ समु०

(ढ़) अल्ला ने बिना खम्भों के आकाश खड़ा किया। यह बात कहने वाला कोई महामूर्ख है। क्योंकि जहां आकाश है वहां सूर्य एवं पृथ्वी की आकर्षण शक्ति सम होने से किसी सहारे की आवश्यकता ही नहीं। यहां महावैज्ञानिक दयानन्द ने कितनी वैज्ञानिक बात कही है। —स० प्र० १४ समुल्लास

(ण) जिन मुसलमानों के स्वर्ग में अनेकों हूरो लोण्डों की भरमार है, वह स्वर्ग नहीं घोर नरक है क्योंकि इन्द्रियों के भोगों से सदा इन्द्रियां क्षीण होकर विभिन्न रोगों के लग जाने से अकाल मृत्य निश्चित है। — स० प्र० १४ समुल्लास

सत्यार्थप्रकाश के यहां कुछ आवश्यक स्थलों को रखने का अभिप्राय यही है कि महर्षि दयानन्द कृत सारा सत्यार्थप्रकाश वैज्ञानिक खोज तथा रिफार्म की भावना से युक्त है। जिसकी चर्चा संविधान की उपरोक्त ४२ वीं धारा में की गई है। कुछ लोग महर्षि दयानन्द द्वारा किये गये खण्डन को तो सत्य कहते हैं पर भाषा के कठोर होने की निन्दा करते हैं। इसमें दो मत नहीं की अनेक स्थलों पर ऋषि की भाषा कठोर है परन्तु यह उस डाक्टर के नश्तर अथवा मां की ताड़ना की भावना से युक्त है जो मरीज को ठीक करने की भावना तथा बच्चे के जीवन को सुधारने के दृष्टिकोण से कही गई है।

अन्त में भारतीय संविधान की धारा सं० ४२।४ए।५१ए।६ के अनुसार हम भारत सरकार से यह अनुरोध करते हैं कि वह इस धारा की भावना के अनुसार राष्ट्र में नित्य पैदा हो रहे भगवानों के पाखण्ड, जादू, टोना, झाड़-फूक द्वारा अनेकों योग्य नागरिकों की हत्या, माता के नाम पर जगराते वालों द्वारा बच्चों की की बलि, योग के नाम पर भारतीय जनता को अश्लील मार्ग द्वारा चरित्र की हानि करने वाले पाखण्डियों तथा जड़ग्रन्थ, मिट्टी या धातु की मूर्तियों की पूजा के नाम पर गरीबों तथा मूर्खों को ठगने और राष्ट्र में मत -पन्थों के नाम पर फूट तथा अज्ञान का बीज बोने वाले लोगों के साथ आर्यसमाज का सरकारी देख-रेख में शास्त्रार्थ करवायें। भारत सरकार देखेगी कि जब वह सत्यार्थप्रकाश के सत्य मन्तव्यों के अनुसार अपनी न्याय एवं आर्थिक सहायता देकर उन पाखण्डियों के साथ शास्त्रार्थ करवायेगी तो चन्द ही दिनों में यह राष्ट्र सभी पाखण्डों तथा जालों से बचकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उन्नति के पथ पर अग्रहोगा।

(नोट.—सत्यार्थप्रकाश में आये शब्दों के भावानुसार)

"सत्यार्थ प्रकाश–आधुनिक सन्दर्भ में"

कुमारी कंचन गुप्ता एम० ए० (संस्कृत)

यदि हम अपने समग्र साहित्य पर दृष्टिपात करें, तो उसमें वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। जहां एक प्रकार का साहित्य ऐतिहासिक कोटि का है, जिसमें तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक आदि विविध परिस्थितियों का वर्णन किया गया है; तथा जो किसी व्यक्ति विशेष यथा राजा अथवा महापुरुष आदि को लक्ष्य करके रचा गया है। अथवा किसी समाज विशेष की कुरीतियों के परिमार्जन को लक्ष्य में रखकर भी साहित्य रचना की गई है। इस के ही साथ दूसरा ऐसा साहित्य भी मिलता है, जो मानव जीवन के व्यक्तिगत एवं सामाजिक सभी पहलुओं को दृष्टि में रखकर रचा गया है। शब्दान्तर में, जो साहित्य व्यक्ति के धर्म और सदाचार का वर्णन तो करता ही है, उसके साथ ही साथ देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक निर्माण को भी महत्त्व प्रदान करता है। इस प्रकार के साहित्य को हम मानवशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र की संज्ञा दे सकते हैं।

जहाँ हमें सभी प्रकार का साहित्य प्राप्त होता है, वहां मानवशास्त्र के भी अतिप्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही रूप उपलब्ध होते हैं। मनुस्मृति धर्मशास्त्र का प्राचीन साहित्य है, तो इसी का आधुनिकता में ढला, अर्वाचीन रूप है सत्यार्थप्रकाश। मानवशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र किन्हीं विशेष परिस्थितियों और सीमाओं में बद्ध न होकर सार्वकालिक साहित्य होता है, यही कारण है कि सत्यार्थ-प्रकाश जहां अपनी सामयिक सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक कुरीतियों का महत्त्वपूर्ण समाधान लिए हुए है, वहां यह मानव के अपने, ईश्वर, धर्म, समाज व राष्ट्र के प्रति सभी कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए एक आदर्श आचरण प्रस्तुत करता है। मानव-जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान उसमें उपलब्ध है।

वर्तमान परिस्थितियों में जब हम सत्यार्थ-प्रकाश का उपरोक्त दृष्टि से मूल्यांकन करते हैं, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि एक शती पूर्व यह ग्रन्थ अपनी जिस महती उपयोगिता को धारण किये हुए था, आज की बदली परिस्थितियों में भी अपनी उसी उपयोगिता को अक्षुण्ण बनाये हुए है। अथवा यदि यह कहें कि आज के समय में सत्यार्थ-प्रकाश की उपयोगिता तदपेक्षया अधिक है तो अत्युक्ति न होगी। दूसरे शब्दों में, इस ग्रंथ में वर्णित तथ्यों को हम सौ वर्ष पुराना कहकर उपेक्षित नहीं कर सकते। उन तथ्यों को आचरण में लाकर एक आदर्श मानव, आदर्श समाज, आदर्श राष्ट्र और एक आदर्श विश्व का भी निर्माण कर सकते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, यहाँ सत्यार्थ प्रकाश के कुछेक तथ्यों को ही लेकर विचार करते हैं—

सर्वप्रथम 'धर्म' शब्द को ही लेते हैं। आज के इस वैज्ञानिक युग में 'धर्म' कुछ दकियानूसी विचारों का ही द्योतक रह गया है। आज की युवा पीढ़ी तो धर्म के नाम मात्र से ही चिढ़ जाती है। इसका भी एक मनोवैज्ञानिक कारण है। क्योंकि धर्म के श्रवणमात्र से ही एकाएक उनके सम्मुख, धर्म अनेकानेक प्रचलित सम्प्रदायों, उनके परस्पर विरोधी सिद्धान्तों और विचारों के मतभेदों के फलस्वरूप उनमें हो रहे झगड़ों का मूर्त्त रूप धारण किये प्रकट हो जाता है। वास्तव में वे यह नहीं समझ पाते कि धर्म विचारों की इस भिन्नता का नाम नहीं है, जो हमें सभी सम्प्रदायों के पूजा-पाठ के विविध ढंगों और उनके परस्पर विरोधी सिद्धान्तों में दृष्टिगोचर होता है। धर्म का प्रधान व मुख्यतम रूप जो उनकी दृष्टि से ओझल हुआ पड़ा है, वह है आचार। अतएव मनुष्य के व्यवहार के जो करणीय कर्त्तव्य हैं -- लोकाचार के अनुकूल और आत्मा को तुष्टि प्रदान करने वाले जो स्वाभाविक कार्य हैं, उन्हें ही धर्म कहते हैं। महर्षि मनु के शब्दों में, 'आचारःपरमोधर्मः" तथा "स्वस्य च प्रियमात्मनः' धर्म की परिभाषायें हैं। आचार रूप यह धर्म और "स्वस्य च प्रियमात्मनः" किसी भी स्थान, समय अथवा व्यक्ति भेद से भिन्न नहीं हो सकता, आचार की श्रेष्ठता तो सबकी दृष्टि में एक सी ही है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में ही धर्माधर्म की विवेचना करते हुए लिखा है, "जो पक्षपात रहित न्याय

रूप आचार है, उसी का नाम धर्म और इससे विपरीत जो पक्षपात सहित अन्यायाचारण, सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण-रूप कर्म है, उसी को अधर्म कहते हैं।" कोई भी मनुष्य यदि परिवार अथवा समाज में बिना अपने पराये के भेद भाव के सम (उचित) व्यवहार करता है, सत्य अर्थात् सच्चाई, परोपकार, करुणा, दया, दानादि की भावना से कार्य करता है और झूठ, चोरी, रिश्वत, दुर्व्यवहार आदि दुष्कर्मों (असत्य) का त्याग करता है तो उसकी आत्मा स्वभावतः ही सन्तुष्ट रहती है और उसके यही कार्य लोकाचार के अनुकूल एवं सदाचरण कहलाते हैं। इस प्रकार के व्यवहार के औचित्य से आज की युवा पीढ़ी भी इन्कार नहीं कर सकती, इसी का नाम धर्म है। इसके अतिरिक्त धर्म कुछ अन्य आडम्बर नहीं है। यदि स्वामी जी की 'धर्म' की इस उपरोक्त परिभाषा को हृदयंगम कर लिया जाये, तो आज पाई जाने वाली धर्म के प्रति घृणा व भ्रान्ति की भावना का उन्मूलन हो सकता है। इसी धर्म की स्थापना करते हुए ही स्वामी जी ने किसी व्यक्ति विशेष अथवा सम्प्रदाय विशेष को धर्माधर्म के ज्ञान के लिए उत्तरदायित्व नहीं सौंपा। उन्होंने पक्षपातरहित और ईश्वरीय ज्ञान वेद को ही धर्मज्ञान का स्रोत माना है। सत्यार्थ प्रकाश के शब्दों में "धर्माधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक-ठीक नहीं होता।"

इसके पश्चात् हम शिक्षा के क्षेत्र को लेते हैं, स्वामीजी द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश के तृतीय समुल्लास में वर्णित शिक्षा का प्रकार व उसकी पद्धति एकदम विज्ञान-सम्मत है। इस पद्धति के द्वारा आधुनिक जीवन की अनेकानेक चारित्रिक व सामाजिक विकृतियों को सुधारा जा सकता है। उन सबका तो यहाँ वर्णन नहीं किया जा सकता, उनमें से एक दो बातों को ही लेते हैं।

हम देखते हैं कि हमारी सरकार शिक्षा के महत्त्व को समझते हुए उसके प्रचार-प्रसार के अनेकों ढंग अपनाती है। कभी प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम लागू किया जा रहा है, तो कभी कुछ। इतना सब प्रयत्न होने के बावजूद भी शिक्षा का महत्व समझा नहीं जाता। महर्षि दयानन्द ने १०० साल पूर्व ही शिक्षा का महत्त्व जान लिया था।' 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' की वृत्ति धारण करने वाले तत्कालीन समाज में भी उन्होंने सभी लड़के-लड़कियों के लिए शिक्षा आवश्यक बताते हुए सत्यार्थ प्रकाश में लिखा था कि 'राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पाँचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।" यद्यपि यह सत्य है कि आज भी हमारी सरकार ने पाँचवें वर्ष में विद्यालय प्रवेश आवश्यक माना है, परन्तु ऐसा कोई कानून नियम नहीं है। यदि सत्यार्थ-प्रकाश के कथनानुसार इस नियम का उल्लंघन-कर्त्ता दण्ड-भागी हो तो ग्रामों और पिछड़े क्षेत्रों में अनेकों बच्चे अनपढ़ न दिखाई दें। अनपढ़ लोग तो आज भी शिक्षा का महत्त्व नहीं समझते। कितनी आधुनिकता और दूरदर्शिता है सत्यार्थ प्रकाश के इस उपरोक्त कथन में। स्वामी जी ने इस वाक्य में जो 'घर में न रख सके' इन शब्दों का प्रयोग किया है, इनसे गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति का निर्देश मिलता है। इस पद्धति का तो इस भौतिक चकाचौंध के युग में तो अपना विशिष्ट महत्त्व है, जिसके द्वारा आज का विद्यार्थी मात्र कागजी डिग्रियों का उद्देश्य न रख कर यथार्थ रूप में विद्या-ग्रहण कर सकता है।

इसके साथ ही हम तृतीय समुल्लास के प्रारम्भ की महत्त्वपूर्ण पंक्तियों पर कुछ विचार करते हैं। स्वामी जी ने लिखा है, 'सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता-पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चांदी, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नादि से युक्त आभूषणों के धारण करने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है।"

यदि प्रारम्भ से ही माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षा तथा विद्या के महत्त्व से अवगत कराते रहें तथा शुभ गुणों और कार्यों में उनकी रुचि उत्पन्न करते रहें तभी उनका शारीरिक और आत्मिक अलंकरण सही अर्थों में हो सकता है, क्योंकि आभूषणों आदि के धारण करने से भले ही बाह्य सौन्दर्य भासित हो परन्तु इनसे तो आत्मिक और चारित्रिक अधः पतन ही होता है। वास्तविक शोभा तो विद्याग्रहण और श्रेष्ठ कर्मों को करने से ही होती है। यहां यह जानना आवश्यक है कि आभूषणों से तात्पर्य मात्र सोने, चांदी, रत्नादि के आभूषण धारण करने से ही नहीं, अपितु फैशनवृत्ति (अपने शरीर को ही सजाने-संवारने की वृत्ति) से है। क्योंकि सभी प्रकार के फैशनों का परिणाम देहाभिमान और बाह्य विषयों में आसक्ति आदि के अतिरिक्त कुछ नहीं। आज विद्यार्थियों की विद्यालयों-महाविद्यालयों में जाते हुए भी शिक्षा ग्रहण के प्रति उदासीनता और शारीरिक सजावट के प्रति प्रवृति के परिणाम स्वरूप ही तो चरित्रविहीनता, दुराचरण, शिक्षण-संस्थाओं में अव्यवस्था, राष्ट्रीय प्रेम का अभाव, कर्त्तव्य पराङ्मुखता आदि निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। मध्याह्न समय के सिनेमा घर तो अधिकांशतः विद्यार्थियों से ही भरे होते हैं। यदि सत्यार्थ प्रकाश के

सारगर्भित कथनानुसार प्रारम्भ से ही बच्चे विद्या, शिक्षा व शुभ-कर्म रूप आभूणों को ही अपने वास्तविक आभूषण समझने लगें तो आज के इन भयंकर परिणामों से बचा जा सकता है।

शिक्षाक्षेत्र को यहीं छोड़ हम किञ्चित् सत्यार्थ प्रकाश के सामाजिक दृष्टिकोण पर विचार करते हैं। सामाजिक क्षेत्र के मुख्य पक्ष जाति-पाति की समस्या को ही लेते हैं। कहने के लिए तो हमारी सरकार भी जात पाँत उन्मूलन में काफी प्रयत्न-शील है इसी उद्देश्य को लेकर महात्मा गाँधी ने भी अनेकों प्रयत्न किये और शूद्रों को हरिजन नामक एक पृथक् वर्ग की उपाधि प्रदान कर दी। गाँधीजी का अस्पृश्यता उन्मूलन सम्बन्धी प्रयत्न तो अवश्य सराहनीय है, परन्तु हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि 'हरिजन' नामकरण देकर उन्होंने निम्नवर्ग को उच्च वर्ग सी समानता प्रदानन करके नाम मात्र का ही परि-वर्तन किया। समस्या तो लगभग वही रही। और महात्मा गांधी को ही आधार बना कर हरिजन, आदिवासी तथा अल्पसंख्यकों के लिए राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में विशेष सुविधाओं की घोषणा करके भारत सरकार भी इस जात-पांत को बढ़ावा ही दे रही है। शासन यह भूलता है कि महात्मा गांधी से भी लगभग एक शती पूर्व, एक श्रेष्ठ समाज को लक्ष्य में रखने वाले, युग पुरुष महर्षि दयानंद ने सत्यार्थ'प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में इस समस्या का सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया था। जाति पांति रूप वर्ण व्यवस्था का इतने सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है कि इससे जहाँ एक ओर छुआछूत की महती समस्या का समाधान मिलता है, वहाँ दूसरी ओर प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता का उचित लाभ प्राप्त करने वाले श्रेष्ठ समाज का आदर्श प्रस्तुत होता है।

इस वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म नहीं कर्म वैविध्य है। "जन्मना जायते शूद्रः' मनु के इस वचनानुसार तो उत्पन्न होते ही संस्कारों व शुभ कर्मो के अभाव में तो सभी एक सदृश शूद्र ही होते हैं, पश्चात् जो जैसा कर्म करता है तदनुसार ब्राह्मणादि श्रेणियों को ग्रहण कर लेता है। इसीलिए—

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्रह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥"

मनुस्मृति के बचन को उद्धृत करते हुए स्वामीजी ने कहा कि शूद्र, ब्राह्मण और ब्राह्मण, शूद्र तक बन सकता है। कोई भी ब्राह्मण दुष्कर्म करके अध्यापन रूप स्वकर्तव्य को त्याग कर ब्राह्मणत्व को स्थिर नहीं रख सकता। इसी प्रकार प्रजापालनादि की योग्यता के बिना क्षत्रियत्व को और धनोपार्जन के गुण से विहीन वैश्यत्व को धारण नहीं कर सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन सब की योग्यता से रहित जो मानव है, उसका भी उचित उपयोग लेना आवश्यक है। इसी लिए उससे इन तीन वर्णों की सेवा का उचित कार्य लेने की व्यवस्था की जिससे उच्चवर्गों के कार्यों में सहयोग प्रप्त हो और एक श्रेष्ठ समाज और उस श्रेष्ठ समाज से श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण हो सके। तथा इस प्रकार के मनुष्य को शूद्र वर्ण कीं संज्ञा दी गई। सत्यार्थ प्रकाश के शब्दों में जिस पुरुष में "जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं क्योंकि उत्तम वर्णो को भय होगा कि जो हमारी सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त है तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उत्तम चाल चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साह बढ़ेगा।" इसके पश्चात ब्राह्मणादि के अधिकारों का वर्णन कर शूद्रों का अधिकार लिखते हुए स्वामी जी कहते हैं "शूद्रों को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञान सम्बन्धी का कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीर के काम सब कर सकते हैं।"

सत्यार्थ प्रकाश की इस व्यवस्था के अनुरूप ही यदि प्रत्येक योग्यतानुसार अपने अधिकारों का चयन करे तो देश जाति का कितना उपकार हो जाय। आज देखते हैं कि प्रायः सभी अध्या-पक वणिक वृत्ति धारण किये हुए हैं, परिणामतः विद्या के क्षेत्र में उन्नति नहीं हो पाती। क्योंकि अध्यापन और धनोपार्जन के लक्ष्यों में सामञ्जस्य नहीं। अध्यापन कार्य ब्राह्मण का है तो वणिक् वृत्ति वैश्य का कार्य है। उपरोक्त आदर्श वर्ण-व्यवस्था में तो निम्न और उच्च का छुआछूत और अस्पृश्यता का तो प्रश्न ही नहीं रह जाता यह तो प्रत्येक व्यक्ति की योग्यतानुसार समाज का विभाजन है।

इस प्रकार यहाँ कुछ अंशों को लेकर ही आधुनिक सन्दर्भ में उसकी उपयोगिता का वर्णन किया गया है। सत्यार्थ प्रकाश तो ऐसे अनगिनत बहुमूल्य रत्नों का आगार है, जिनके ग्रहण से आधुनिक युग की अनेकों जटिल समस्याओं को सुलझा कर प्रत्येक जाति व समाज ऐश्वर्य सम्पन्न बन सकता है। सत्यार्थ-प्रकाश का यह शताब्दी समारोह हमारे लिए पथ प्रदर्शक तथ्यों को इंगित करके इसके प्रसार तथा साथ ही आचरण की महत्व-पूर्ण प्रेरणा प्रदान कर रहा है।

सत्यार्थप्रकाश का महत्व : मत-मतान्तरों के परिप्रेक्ष्य में

—पं० भैरवदत्त शुक्ल

★

महर्षि दयानन्द का महत्व किसी भी विवेक-शील व्यक्ति की दृष्टि से छिपा नहीं है। उन्होंने सत्य का पक्षपोषण किया और असत्य की धज्जी उड़ाने में कोई भी कोर-कसर बाकी नहीं रखी उनका प्रतिपादित धर्म सार्वभौम वैदिक धर्म है, उनकी उद्घोषित संस्कृति शुद्ध निष्कलुष मानव संस्कृति है और उनका विश्वास विमल तर्क एवम् मेधा से संवलित, विवेक -पूर्ण औचित्य से युक्त सुपुष्ट विश्वास है।

वस्तुतः "रूढियों और गतानुगतिकता में फंसकर अपना विनाश करने के कारण उन्होंने भारत-वासियों की कड़ी निन्दा की और उनसे कहा कि तुम्हारा धर्म पौराणिक संस्कारों की धूल में छिप गया है। इन संस्कारों की गन्दी पर्तों को तोड़ फेंको। तुम्हारा सच्चा धर्म वैदिकधर्म है, जिस पर आरूढ़ होने से तुम फिर से विश्वविजयी बन सकते हो, किन्तु, इससे भी कड़ी फटकार उन्होंने ईसाइयों पर और मुसलमानों पर भेजी, जो दिन-दहाड़े हिन्दुओं की निन्दा करते फिरते थे।"

[संस्कृति के चार अध्याय; दिनकर; पृ० ४६३।]

उनकी प्रमुख देन यह है कि उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश जैसी कमनीय कृति में सत्य का संबल लेकर, अर्थ वर्त्तिका पर तपस्या-स्नेह उड़लते हुए प्रकाश अलोकित किया जिसकी समसामयिक ऐतिहासिक भूमिका श्लाध्य है और एक शताब्दी व्यतीत हो जाने के बावजूद ज्यों की त्यों वनी हुई है।

असत्य, अनाचार भ्रष्टाचार, अनुशासन-हीनता भृति अवगुणों से लिप्त वर्तमान भारतीय जन-जीवन में सत्य, सदाचार, शिवत्त्व, अनुशासन आदि मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए 'सत्यार्थ-प्रकाश' की महीयती महत्ता का प्रचार परम आवश्यक है। खेद यही है कि हमारी बुद्धि गांधारीवत् कल्पना-पट आवेष्टित करकें दृष्टि-रहित वने रहने में ही कल्याणमयी बनने का स्वाँग कर रही है और शाश्वत प्रकाश की प्रभविष्णुता से वंचित बनी हुई है।

'सत्यार्थ-प्रकाश' में न्यूनताओं का उच्छेद करते हुए, मानव-मूल्यों के सुस्थिर प्रतिमान निर्धारित करके, रूढ़िवाद का समूल-उच्छेदन कर दिया गया है। उसकी विवेचित विषय-वस्तु ने भारत के समस्त मत-मतान्तरों को झकझोर दिया है। उसके अनुयायी विद्वानों ने सुधार, संशोधन और परिष्कार का सहारा लेना उचित समझा है। इस दृष्टि से भी, उसका कम महत्व नहीं है।

खंडन का औचित्य—जिन मनीषियों ने समाज के पतन का पर्यवेक्षण एवं विश्लेषण किया है, वे यह तथ्य स्वीकार करते हैं कि 'सत्यार्थ-प्रकाश की खंडन-शैली न केवल अतीत कालीन् समाज एवं धर्म के अनुकूल थी, वरन् आज के परिप्रेक्ष्य के लिए भी सर्वथा उपयुक्त है। सत्यार्थ-प्रकाश में पहिले सामाजिक एवम् धार्मिक रोगों का सुसंगत निदान किया गया है और फिर उसका उपचार भी खोज कर रक्खा गया है। उसमें प्रयुक्त खंडन-शैली का पारुष्य रोषाविष्ट नहीं, दयाकुल है; दुराग्रही नहीं, विनम्रता-संवलित है; साँप्रदायिक नहीं धार्मिक है; उन्मत्त नहीं गहन गंभीर है।

उससे ही चमत्कृत होकर, अन्य मतावलंबियों ने अपने मत-ग्रंथों के वे प्रकरण ही परिवर्तित कर दिये हैं, जिन पर ऋषि ने आक्षेप किया था। ईसा को ईश्वर-पुत्र घोषित करने वाले अब उन्हें मानव पुत्र के रुप में स्वीकार करने लगे हैं; 'काफ़िर' और 'जिहाद' का पुराना तात्पर्य अब कम या दबे-दबे ही सुनायी पड़ता हैं और पुराणों के अज्ञान-परिपूर्ण स्थल विवेक-समस्त बनाने की होड़-सी लगी हुई है।

हिन्दू मत—सत्यार्थ-प्रकाश की खंडन-शैली का ही यह प्रभाव पड़ा है कि अब कोई भी विवेक शील हिन्दू संप्रदायानुयायी विष्णु को घौड़े के शिरवाला, आश्विनी-कुमारों को घोड़ी की नाक से उत्पन्न, कश्यप की पत्नियों से सूर्य, वृक्ष, नाग, सर्प आदि को पैदा होने वाला, मान्धाता को पुरुष के उदर से उत्पन्न होने वाला शायद ही स्वीकार कर सके। हालांकि अभी इन बातों का मानना पूरी

तौर से नष्ट नहीं हुआ है और अनेक पुरोहित, पंडे, कथावाचक इन्हीं के सहारे इस समय भी जनता को बेवकूफ बनाने का प्रयास कर रहे हैं, फिर भी बहुत-कुछ सुधार हो चुके हैं।

इसी प्रकार, अब धरती को शेष नाग के फणों पर या गौ के शृंगों पर टिका हुआ नहीं माना जाता। 'उक्षा दाधार पृथिवीम्' सदृश वैदिक मंत्रांश का सायण, महीधर जैसे भाष्यकारों का यह अर्थ कि वृषभ पृथ्वी को धारण किये हुए है, अब हास्यास्पद समझा जाने लगा है। अब तो 'सत्यार्थ-प्रकाश' के अनुग्रह,प्रसाद से 'उक्षा' को 'सूर्य' मान कर यही समझा जाने लगा है कि 'सूर्य ने अपनी आकर्षण -शक्ति से पृथ्वी को धारण कर रक्खा है।' इस पर सूर्य सिद्धान्त का ठोस साक्ष्य है और विज्ञान की मुहर भी लगी हुई है।

कोई समय था, जब कि पाखंडी वैद्य यह माना करते थे कि रुद्र के कोप से ज्वर उत्पन्न होता है। परन्तु, सत्यार्थ-प्रकाशकार की कृपा से अब यह कोई भी नहीं मानता। महर्षि दयानन्द ने वेद एवं ब्राह्मण -ग्रन्थों को आधार लेकर घोषित किया कि 'रुद्र' का अर्थ अग्नि है। रुद्र-कोप का वास्तविक तात्पर्य है, जठराग्नि का कोप या विकार जिससे ज्वर उत्पन्न होता है।

सत्यार्थ-प्रकाश के प्रकाशित होने से पूर्व विद्वान् मानते थे कि अश्वमेध यज्ञ में घोड़े की, गो मेध यज्ञ में गौ की और नर मेध यज्ञ में मनुष्य की बलि दी जाती थी। परन्तु, महर्षि दयानन्द की विवेचना के परिणाम स्वरुप अब कोई भी भारतीय वेद-भाष्यकार यह बात स्वीकार नहीं करता। महर्षि ने स्पष्ट किया कि 'राष्ट्रम् वा अश्वमेधः' (राष्ट्र ही अश्वमेध है), ' अन्नम् हि गौ—' (अन्न ही गौ है) 'अग्नि र्वा अश्वाः' (अग्नि ही अश्व है)। इससे सही तात्पर्य यह ज्ञात हुआ है कि अग्नि में अन्न की आहुति करने से धुंआ पैदा होता है जिससे राष्ट्र-समृद्धि पनपती है। यज्ञ से वायु शुद्ध हो जाती है और वर्षा का सन्तुलन बना रहता है।

अब तो शंकर के त्रिशूल, चन्द्र, नन्दी वृषभ, सूर्य आदि पदों के रुढ़ अर्थ अस्वीकृत करके प्रतीकात्मकता का सहारा लेते हुए विवेक-सम्मत तात्पर्य खोजे जा रहे हैं। इन सब आयोजनों के मूल में सत्यार्थ-प्रकाश की खंडन-शैली ही है।

इसी तरह स्वर्ग-नरक की पिछली कल्पना समाप्त हो चुकी है। अब तो स्वर्ग और नरक कहीं न होकर इसी धरती पर स्वीकार किये जाते हैं। इनके सुखों व दुःखों का भोग इसी मृत्यु लोक में माना जाने लगा है।

जितने भी पौराणिक मत-मतान्तर हैं, उन सब का आधार अवतारवाद है। राम-कृष्ण आदि को अब ईश्वर के अवतार न मान कर महापुरुष समझा जाता है। हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युगीन महा काव्य साकेत, प्रिय प्रवास, साकेत-सन्त आदि में अवतार वाद की कीलें ढ़ीली की गयी हैं। यदि सत्यार्थ-प्रकाश न होता तो शायद अवतार वाद की धज्जियां उड़ना संभव न होता—

अवतार के सहयोगी के रुप में जितने भी पोपवाद, गुरुवाद या महन्तवाद पहिले पले हैं, इस समय भी पल रहे हैं, उन सब की पोल सत्यार्थ-प्रकाश में खोल कर रख दी गयी है। इसी लिए जब कभी अंध-विश्वासियों की ओर से नये-नये अवतारों की घोषणा की जाती है, उनका प्रायः विरोध ही किया जाता है। यदि सत्यार्थप्रकाश की कसौटी न होती तो शायद हिन्दू मत-मतान्तरों के कलुष-कर्दम में हिन्दुत्व अब तक डूब गया होता। धन्य है सत्यार्थ-प्रकाश जिसने हिन्दुत्व का संरक्षण किया है।

इस्लाम मत—सत्यार्थ-प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में विवेचित समीक्षा से प्रेरणा लेकर 'कुरान शरीफ' के नये भाष्य रचे गये, जिन में सर सैयद अहमद खाँ-मौलवी मुहम्मद अली एम. ए. मौलाना अबुल कलाम आजाद का नाम उल्लेख्य है।

इन भाष्यों की विशेषता यह है की ये प्रायः पूर्वाग्रह मुक्त हैं। इनमें मतपरक कट्टरता का अभाव है और आक्षेपयोग्य स्थलों की विवेक-सम्मत व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। कुरान के मौलाना आजाद कृत उर्दू अनुवाद में मुस्लिम मतांधता का परित्याग है। मुहम्मद अली, सरसैयद अहमदखाँ ने बहिश्त, दोजख, फ़रिश्ते आदि की पुरानी व्याख्याएं छोड़कर पूर्वाग्रह-मुक्त नयी उपादेय व्याख्याएं की हैं।

हालांकि ये विवेक-सम्मत भाष्य मुस्लिम कट्टरता के कोप-भाजन बने हैं फिर भी विवेक की हार अधिक दिनों तक नहीं चलती। जिस कट्टर मुस्लिम जनता ने कभी सरसैयद अहमद खाँ को नास्तिक, धर्मद्रोही घोषित किया था, वही अब मौलाना आजाद के स्वर में स्वर मिलाकर कहने लगी है कि "कुरान ने किसी भी धर्म के अनुयायी से यह नहीं चाहा कि कोई नया मत या नया सिद्धांत स्वीकार करे, बल्कि कुरान हर गिरोह के सामने यही माँग पेश करता है कि तुम अपने धर्म की वास्तविक शिक्षा पर सच्चाई के साथ अमल करो कुरान कहता है किअगर तुमने ऐसा कर लिया तो मेरा काम पूरा हो गया। क्यों कि मेरा संदेश कोई नया संदेश

नहीं है, बल्कि वही सनातन सार्वभौमिक संदेश है जो समस्त धर्म-संस्थापकों ने दिया है"

एक अन्य प्रसंग में मौलाना आजाद लिखते हैं —"कुरान जब कहता है कि 'अल्-इस्लाम के अतिरिक्त और कोई धर्म परमात्मा के निकट मान्य नहीं, तो इसका मतलब यही होता है कि उस ईश्वरीय धर्म के सिवा जो एक ही है और जिसकी शिक्षा समस्त पैग़ंबरों ने समान रुप से दी है, मनुष्य-निर्मित कोई भी गिरोह बन्दी मान्य नहीं हो सकती"

मुहम्मद अली ने कुरान के अंग्रेजी अनुवाद के प्राक्कथन के पृष्ठ६३ पर स्वीकार किया है कि वहिश्त और दोजख कोई स्थान विशेष न होकर मनुष्य की दो प्रकार की अवस्थाएंहैं। उन्होंने फरिश्ते और शैतान को भी आकार-विशेष न स्वीकार कर मानव की अच्छी और बुरी भावनाओं के रुप में माना है। इसी प्राक्कथन के पृष्ठ ७८ पर उन्होंने शैतान को सारथी और फरिश्ते को साक्षी माना है।

इसी प्रकार 'इस्लामी अकावद के पृष्ठ७४ पर बतलाया गया है—"मरते वक्त अजाव या सवाब के फरिश्ते आते हैं, वे दर हकीकत करने वाले के बद व नेक आमाल होते हैं।"

मुसलमानों में मान्यता है कि कयामत के दिन आदमी को इसके कार्यों की किताब दी जायगी। परन्तु, मुहम्मद अली का कहना है कि ये कर्म मनुष्य के भीतर हैं और कयामत के दिन कर्मों के अनुसार फल प्रदान किया जायगा। यह विचार आर्य कर्म सिद्धांत से मेल खाता है।

अधिकांश मुसलमान मानते हैं कि कब्र में मानव शरीर मिट्टी हो जाता है केवल एक हड्डी 'अल-अज्ब' कयामत तक बची रहती है कयामत के वक्त चालीस दिनों तक लगातार बारिश होगी और पृथिवी सर्वत्र बारह हाथ पानी के नीचे चली जायगी। तभी 'अल-अज्ब' से एक नयी देह का अंकुर फूटेगा और उसी शरीर को लेकर आत्माएं अल्लाह के सामने पेश होंगी। क़यामत के दिन सूर्य पश्चिम में निकलेगा। दज्याल नाम का दानव अरबी भाषा में सब कहीं इस्लाम का संदेश सुनायेगा, मेंहदी प्रकट होंगे और सूर नामक शंख से तीन बार ध्वनि होगी। उसे सुनकर सभी रुहें अल्लाह के सामने खड़ी होंगी और मुहम्मद उनके प्रवक्ता होंगे। उसी समय प्रत्येक आत्मा के पाप और पुण्य का विवरण लिया जायगा। पुण्य और पाप के निर्णय का काम जिब्रील करेंगे।

सत्यार्थ-प्रकाश की समीक्षा से प्रभावित होकर इन विचारों पर मुस्लिम जगत् शंकालु हो उठा है। लोग सोचने लगे हैं कि जब हड्डियों का पूरा ढांचा मिट्टी बन जाता है, तो अल-अज्ब आखिर कौन तत्वों से बना है, जो कयामत तक बना रहता है। कयामत के दिन तक आखिर चालिस दिनों तक लगातार बारिश होने का कौन सा तुक है क्या यह काम थोड़ी देर में पूरा नहीं हो सकता यदि नहीं तो फिर ईश्वर सर्वशक्तिमान कैसे? पृथ्वी सिर्फ बारह हाथ पानी में जायगी तो क्या बारह हाथ से ऊचे मकान या पहाड़ आदि पर चढ़कर आदमी कयामत से बच नहीं जायगा? जो आदमी चंद्र या अन्य ग्रहों पर बसने की सोच रहे हैं, क्या वे कयामत में बचे नहीं रहेंगे? गैर-मुस्लिम जो जलाये जाते हैं, वे कैसे जिन्दा हो जायेंगे? ऐसे लोगों को पाप-पुण्य का फल कैसे मिलेगा? सूर्य के पश्चिम में निकालने का क्या प्रयोजन हो सकता है? दज्याल दानव का सन्देश गैर अरबी भाषी कैसे सुन सकेगें? अब तो प्रायः मुसलमान अरबी के जानकार नही हैं। आदि-आदि।

यह किसी से छिपा नहीं है कि काफ़िर और जिहाद-दो शब्दों का सहारा लेकर मुसलमानों ने संसार पर कैसा क़हर ढाया है। परन्तु सत्यार्थ-प्रकाश से प्रभावित होने के कारण उदार मुस्लिम विद्वानों ने अब इन शब्दों का अर्थ ही परिवर्तित कर दिया है।

मुफ़दात इमाम रागिव ताजुल अरूस के मत से जिहाद का अर्थ है —'किसी ऐसी चीज के साथ जो ठीक न हो, अपनी हद दर्जे की ताक़त लगाकर उसे ठीक करने की कोशिश करना।

मिर्जा अवुल फज्ल के मतानुसार जिहाद का अर्थ है जद्दो जेहद करना यानी सख्त कोशिश करना।

मौलवी मुहम्मद अली ने जिहाद सम्बन्धी आयातों की जांच परख कर के स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यहाँ जिहाद के अर्थ तलवार की लड़ाई करना अरबी भाषा से अपनी अनभिज्ञता का इज़हार करना है।

पचीसवीं सूरत की बावनवीं आयत में आये जिहाद शब्द के विषय में मुहम्मद अली ने "द होली कुरान" के पृष्ठ ७२१ पर लिखा है—"सच्चाई का प्रचार करने की जो भी कोशिश की जाये वह सिर्फ जिहाद ही नहीं, बल्कि कबीर यानी बड़ा जिहाद है। इसी की पुष्टि बैजावी, इमाम असीरुद्दीन, अवुहम्मान आदि अन्य कुरान भाष्य कार भी करते हैं। इस पद का क्रोध और वासनाओं के दमन के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है।

इतिहास के पृष्ठों में कलंकित 'काफिर' शब्द की जो भी उदारवादी परिभाषाएं प्रस्तुत की गयी हैं। उनमें चार प्रमुख हैं--

१ ईश्वर के एकत्व और अस्तित्व पर अविश्वास रखने वाला २ अन्य देवों का मानने वाला और इस्लाम धर्म में बाधा डालने के लिए अत्याचार, झूठ, शोषण, हिंसा का सहारा लेने वाला ३ साधु-सन्त का बाहरी बाना बनाये हुए अहंकार, द्वेष, घृणा, झूठ और स्वार्थ की तुष्टि करने वाला और ४—धर्म ग्रन्थों महा पुरूषों से द्वैष रखने वाला या इनमें भेद-बुद्धि रखने वाला काफिर होता है। उपयुक्त परिवर्तन अच्छे भविष्य के सूचक हैं किन्तु इनके पीछे सत्यार्थ प्रकाश में व्यक्त विचारों की ही प्रेरणा है।

ईसाई मत —

पौराणिकों, मुस्लिमों की ही भाँति सत्यार्थ–प्रकाश की विवेचना से ईसाइयों का भी मस्तिष्क रुढ़ियों और अंध-विश्वासों से मुक्त हुआ है। जाने कितनी पुरानी ईसाई मान्यताओं का विलोप हो चुका है। बुद्धिवाद का आश्रय लेने के कारण उनमें तरह-तरह के मत-भेद पनपने लगे हैं। उनका धार्मिक खोखलापन संसार के सामने अब छिपा नहीं रह गया है। इसलिए उनके प्रचार का ठोस आधर धार्मिक मान्यताएं न होकर आर्थिक प्रलोभन हैं। विदेशी शक्तियों द्वारा पुष्कल धन-राशि पानी की तरह बहाने के बावजूद भारत में ईसाई मत की बेलि दिनों दिन पीली ही पड़ती जा रही है। यदि संसार में ईसाई मत की सत्ता बनी हुई है तो उसका कारण वह परिष्कार है जिसे सत्यार्थ-प्रकाश की समीक्षा से अनुप्रेरित होकर संम्पन्न किया गया है।

सत्यार्थ-प्रकाश की रचना के पूर्व ईसाई लोग सृष्टि - प्रादुर्भाव का समय सिर्फ चार हजार वर्ष पूर्व मानते थे। परन्तु सत्यार्थ-प्रकाश में यह समय दो अरब वर्ष के लगभग सिद्ध किया गया। पहिले तो वैज्ञानिकों ने इस समय को अतिशयोक्ति- युक्त घोषित किया, किन्तु तथ्यों एवं साक्ष्यों की उपस्थिति से वे स्वयम् उसी ओर अग्रसर होना उचित मान रहे हैं। भूगर्भ शास्त्र द्वारा सिद्ध हो रहा है कि लगभग २० लाख वर्ष पूर्व चंडीगढ़, मिश्र, अरब' मध्य एशिया, उत्तर अमरीका स्तनपायी एवं सर्प जाति के प्राणियों का मिलन स्थल था। १९३२ ई० में अमरीकी वैज्ञानिकों को शिवालक पहाड़ी में जो अस्थिपंजर जाबड़ा मिला, उससे डार्विन के विकासवाद पर प्रश्न चिह्न लग गया है। यदि वह जाबड़ा मनुष्य का सिद्ध हो गया तब तो मानव-विकास का ही इतिहास कम से कम एक करोड़ चालीस लाख वर्ष पुराना बतलाया जाने लगेगा। नवीनतम वैज्ञानिक उप-लब्धियों से पृथ्वी की आयु साठ करोड़ चालिस लाख वर्ष तक स्वीकार की जाने लगी है। ईसाई मतानुसार सृष्टि-उत्पत्ति का जो समय है, उस में तो मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की ही विकसित मानव सभ्यता पनप-फैल रही थी। इसी तथ्य से ईसाइयत की अवैज्ञानिकता का पता चल जाता है। वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ ईसाइयत की रुढ़ियों की पोल खुलने लगी है।

कोई समय था जब ईसाइयतजन्य अंधविश्वास द्वारा जानें कितने वैज्ञानिकों को यातनाएं सहनी पड़ीं. लेकिन अब तो स्थिति में बदलाव आ गया है। अब वैज्ञानिकता की अभिवृद्धि के साथ-साथ ईसाइयत की आधार-शिला ही खंडित होती चली जा रही है। जाने कितने पादरी यह स्वीकार करने पर विवश हो गये हैं। कि—१ ईसा दैवी शक्ति द्वारा कुमारी मरियम के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ २ स्वर्ग और नरक स्थान-विशेष नही है। ३—मरने के बाद जीवात्मा अमर रहता है। ४—क्रास पर मरने के बाद ईसा पुनर्जीवित नहीं हुआ।

१९१९ ई० में भारतीय पादरियों का आयोग बैठा जिसमें १५०० पादरियों के पास उपर्युक्त तथ्यों से सम्बद्ध चार प्रश्न प्रेषित करके उत्तर मांगे गये जिनका विवरण निम्न लिखित है—प्रश्न १-क्या ईसा मसीह कुमारी मरियम के गर्भ से बिना पिता के उत्पन्न हुआ था? उत्तर—९५ प्रतिशत पादरियों ने उत्तर प्रेषित किया कि वह कुमारी मरियम के गर्भ से बिना पिता के उत्पन्न न होकर किसी पिता से उत्पन्न हुआ था क्योंकि डिंबाणु-शुक्राणु के मिलन के बिना प्रजनन असंभव है।

प्रश्न २—क्या ईसा मरणोपरान्त कब्रसे जीवित हो उठा था?

उत्तर—७५ प्रतिशत पादरियों ने मत प्रकट किया ईसा कि कब्र से जीवित नहीं हुआ था।

प्रश्न ३—स्वर्ग-नरक का अस्तित्व है, तो कहाँ है?

उत्तर—८३ प्रतिशत पादरियों का उत्तर था कि स्वर्ग-नरक स्थान -विशेष नहीं हैं।

प्रश्न४—क्या मृत्युपरान्त जीवात्मा रहता है?

उत्तर—९६ प्रतिशत पादरियों ने स्वीकार किया कि जीवात्मा अमर है और मृत्युपरान्त भी जीवित रहता है।

उपसंहार—प्रस्तुत वानगी से स्वयमेव सिद्ध हो जाता है कि सत्यार्थ-प्रकाश का महत्त्व असंदिग्ध है। उसमें —"जहां हिन्दुत्त्व के वैदिक

"जब इन्द्रियां अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्य होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कामों में लगाता है, तभी वह बहिर्मुख होता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है।" (समु.९)

पुनः इस मान्यता को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा —

"जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा न हो उन कर्मों का करना उचित है। जब कोई मिथ्या भाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है। इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं।" (समु.१०)

इस प्रकार की शिक्षा परमेश्वर की ओर से प्रतिक्षण मिलती रहती है। ईश्वर अपनी बात बलात् किसी पर नहीं थोपता। प्रेरणामात्र होने से इससे जीव का कर्म स्वातंन्त्य निर्बाध बना रहता है और उसे यह शिकायत करने का अवसर नहीं रहता कि 'मुझे समय पर किसी ने समझाया नहीं।, अर्जुन को सब प्रकार की ऊंच-नीच समझाने के बाद श्रीकृष्ण ने अन्त में यह कह कर अपना वक्तव्य समाप्त किया—

"इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥"(गीता,१८-६३)

अर्थात् समझाना मेरा काम था। इस पर पूरी तरह सोच विचार कर जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर। इसी रुप में परमेश्वर जीव का मार्ग दर्शन करता रहता है। ●

रुप का गहन आख्यान है, वहाँ उसमें ईसाइयत और इस्लाम की आलोचना पर भी अलग- अलग दो समुल्लास हैं"

—संस्कृति के चार अध्याय, दिनकर, पृ० ४६४

अतिरिक्त इसके—"ग्यारहवें, बारहवें समुल्लासों में तो केवल हिन्दुत्व के ही विभिन्न अंगों की बखिया उधेड़ी गयी है ।,,

-उपर्युक्त पृ० ४६४

महर्षि दयानन्द किसी भी मत मतान्तर के विरोधी नहीं थे। वे तो केवल असत्य का उन्सूलन करना चाहते थे। इसी लिए उनकी इस महीयाती कृति में भी स्पष्ट रुप से घोषित कर दिया गया है, — "मेरा कोई नवीन कल्पना या मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसे मानना- मनवाना और जो असत्य है, उसे छोड़ना- छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।"

—सत्यार्थ प्रकाश, स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश, पृ ५८२ संपा

—स्वासी वेदानंद जी ●

सत्यार्थप्रकाश—एक पाकिस्तानी मुसलमान की नजर

संकलन : ओइम् प्रकाश वर्मा

बात १९७४ की है। दयानन्द मथुरा दास कालिज मोगा के प्रिंसिपल के नाम लाहौर से एक पाकिस्तानी मुसलमान भाई का पत्र प्राप्त हुआ था। १५ अक्टूबर १९७४ को भारत और पाकिस्तान के मध्य डाक और तार का सिलसिला शुरू हुआ और उसी दिन उस व्यक्ति ने पहला पत्र जो भारत में किसी के नाम लिखा था वह यही था। ऐसा मालूम होता है कि लिखने वाला किसी जमाने में मोगा में इसी कालिज में शिक्षा प्राप्त किया करता था। चूंकि इस कालिज का संम्बंध आर्य समाज से है अतः यहां किसी जमाने में सत्यार्थ प्रकाश भी पढ़ाया जाता था पत्र लिखने वाले ने उन्ही दिनों सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा था। उसका इसके दिलो-दिमाग पर जो प्रभाव पड़ा उसका अनुमान उस पत्र के मजबून से लगाया जा सकता है जो पाठकों की दिलचस्पी के लिए अविरल रूप में नीचे दिया जा रहा है।

"जनाबआली—गुजारिश है कि बन्दा १९३१ में आपके कालिज में पढ़ा करता था। धर्म शिक्षा के पीरियड में बन्दा ने सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ी थी। इस किताब के मुताल्या ने मेरी जिन्दगी में एक बहुत बड़ा इन्कलांब पैदा कर दिया जिस की वजह से मैं मुसल्सल मसायब का शिकार हो रहा हूं। ४३ साल गुजरे मेरी इस तहकीक पर। मैं मारें खाता हूं। मुलाजमत से निकाला जाता हूं। मुझ पर पत्थरों की बौछार की जाती है, मेरा राशन पानी बन्द किया जाता है। मेरे रिश्तेदार मुझें समझाते हैं, पड़ोसी मुझे सताते हैं। लेकिन मैं किस तरह से हकीकत से इन्कार करूं। मैं जान तो दे सकता हूं किन्तु ईमान नहीं दे सकता, नहीं छोड़ सकता, नहीं छोड़ सकता किसी भी कीमत पर सच्चाई को नहीं झुठला सकता।

लोग मुझे मनाफक बनाना चाहते हैं कि जान बचाने के लिए या अपना घरबार बचाने के लिए उनकी हां से हां मिला दूं। लेकिन मैं ऐसी जलील जिन्दगी से मौत को तरजीह देता हूं। आपको निवाजश होगी अगर आप मुझे 'सत्यार्थ प्रकाश" किताब की एक जिल्द जरूर भेज दें। मुझे बड़ी खुशी हुई कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में खतो-किताबत का रास्ता निकला। नहीं तो यह लोग मेरी इन बातों पर यकीन न करते थे कि सत्यार्थ प्रकाश में क्या कुछ लिखा है। जब किताब मेरे पास होगी तो हर मोतरिज को, हर उस शख्स को जो मुझे कतल करने के लिए आयेगा यह किताब पेश कर के कहूंगा कि इसकी बदल ला तो मैं तुम्हें मान जाऊंगा। लेकिन मैं जानता हूं उनके पास इसका कोई जवाब नहीं है।"

आपकी बड़ी अनायत होगी अगर आप मन्दिर या जेल एडर्स पर भी सत्यार्थ प्रकाश की एक-एक जिल्द भेजकर ममनून फरमायेंगे।

(१) वजीरे आजम पाकिस्तान इस्लामाबाद रावलपिंडी
(२) मुफ्तीमहमूद अहमद इस्लामाबाद
(३) मौलवी शाह अहमद नूरानी इस्लामाबाद
(४) मौलवी अब्बल अलाह मादूदी जमाते इस्लामी इनछरा (लाहोर)

मैं उम्मीद करता हूं कि आप मेरी दरख्वास्तों पर जरूर अमल फरमायेंगे। मेहरबानी फर्मा कर जरूर मुझे हुक्मेआनी से मतलाह फरमायें। दर्जा बदर्जा सबको सलाम अलेकम। गुलाम नवी सूबेदार मेजर २२१ राहमान पुरा, लाहौर—१६।"

इस पत्र पर किसी प्रकार की टिप्पणी की जरूरत नहीं। जहां तक सत्यार्थ प्रकाश का संबंध है वह तो भेज ही दिया गया। किन्तु जो कुछ इस पत्र में लिखा है हम इससे अनुमान लगा सकते हैं कि इस पुस्तक का लोगों पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। १९३१ में इस भाई ने मोगा के डी० एम० कालेज में सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा था। १९४७ में देश का विभाजन हो गया किन्तु ४३ वर्ष गुजर जाने पर भी सत्यार्थ प्रकाश का असर उस पर कायम रहा और वह भी अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में। ●

(उधृतः आर्य मर्यादा, ३ नवम्बर १९७४ अंक)

भ्रम-भेद नाशक सत्यार्थ प्रकाश

"कवित्त"

(१)

अनेक रचे हैं ग्रन्थ, अनेक रचाते जाते,
अनेक विविध भांति, रचना दिखाने को !
हजारों बीतें हैं वर्ष, हटा न अज्ञान तम,
मानव-मानव साथ, भ्रान्तियों बढ़ानेको !!
भिन्न-भिन्न भेद-भ्रान्ति, मन मत मतान्तर,
पंथा-पंथी साम्प्रदाय, अनेक जताने को !
"सत्यार्थप्रकाश" रचा, अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

(२)

सत्यार्थ प्रकाश रचा, एक ही विशेष खामी,
दयानन्द ऋषिवर, सोते को जगाने को !
घोर अन्धकार भगा, आर्यवर्त्त देश जगा,
प्रकाश विशद सत्य, सुपथ दिखाने को !!
मान अभिमान बढ़ा, आर्य सुविज्ञान बढ़ा,
देश-कला ज्ञान बढ़ा, जनता जागाने को !
"सत्यार्थ प्रकाश" रचा, अमर अनूप ग्रन्थ,
देशमें हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

(३)

समता न करे कोई, हजारों ग्रन्थों को पढ़ें,
विश्व में प्रकाश कभी, किया न कराने को !
"सत्यार्थ प्रकाश" हुआ, मूल से हरा है तम,
मानव, के जन-मन, प्रकाश बढ़ाने को !!
मानवता पाई मन्द-दानता, गई बस,
देव-कर्म-धर्म सर्व-याद सुदिलाने को !
"सत्यार्थ प्रकाश" रचा-अमर-अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

(४)

छुआ-छूत भेद-भ्रान्ति, ऊंच-नींच राग-द्वैष,
जाति अभिमान मद, ऊंचता हटाने को !
पन्था-पंथी धर्म कर्म, बना है विरुद्ध वेद,
मानव-मानव साथ, द्वैषता बढ़ाने को !!
सभी मिटाया भ्रम, रास्ता बताया सद,
हुआ है प्रकाश एक ऽ नेकता मिटाने को !!
"सत्यार्थ प्रकाश" रचा, अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !

(५)

"सत्यार्थ प्रकाश" यदि, रचाते न दयानन्द,
रसातल जाती विद्या, आते न बचाने को
आर्य संस्कृति सत्य, गुरु कुल, वेद विद्या,
पढ़ते न आज कोई, कोविद कहाने को !!
"सत्यार्थप्रका" घर-घर में हुआ है आजे,
सुपथ मिला है हमें, आर्य पथ जाने को !
'सत्यार्थ प्रकाश' रचा, अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

(६)

गुरु डम चला अति, पाखण्ड प्रकोप बढ़ा,
केवल बने थे गुरु-चरण पुजाने को !
सन्ध्या, न संयम नीति-रीति सद-कर्म धर्म,
यज्ञ को भुलाये चले, मुक्ति को पठाने को !!
वाम पन्थ रचे पोल, पोल में बजाते ढोल,
खोल-खोल पोल सभी, खोल के बताने को !
"सत्यार्थ प्रकाश" रचा, अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

सत्यार्थ प्रकाश : एक आचार संहिता

कविराज रत्नाकर शास्त्री एम. ए. भूतपूर्व आचार्य, गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन (मथुरा) उ० प्र०

निरुक्त में एक रूपक लिखा है—एक बार विद्या एक सुन्दरी कुमारी का रूप बना कर एक ज्ञानी विद्वान् के पास गई और बोली—"हे ज्ञानवान् । मुझे अपनी शरण में रखलो । मेरे रहते तुम्हारे पास धन, धान्य, ऐश्वर्य की कमी नहीं होगी । लेकिन एक प्रार्थना करती हूं कि जो मेरी निंदा करे, कुटिल हृदयी हो, और परिश्रमहीन निकम्मा हो उससे मेरी सगाई मत करना । मेरी शक्ति इतनी बड़ी होगी कि मैं सदैव तुम्हारे कल्याण और यश को बढ़ाती रहूंगी ।"

"और जिसे तुम पवित्र विचार का, शुद्ध बुद्धि, एवं मेधावी तथा ब्रह्मचारी देखो तथा यह भी जानो कि वह तुम्हारा विद्रोही नहीं है, उससे मेरी सगाई कर देना । क्योंकि वह सच्ची दौलत को रखना जानता है । और चरित्र को उचित मार्ग में प्रवृत्त करेगा ।"

मंत्र में यह रुपक विद्या का इस लिये लिखा गया है कि विद्या पढ़कर जो लोग समता के भाव को नही पा सके, हृदय से सरल न हो सके और स्वावलम्बी न हो सके उनका विद्या पढ़ना बेकार है ।

मनुष्य शरीर से सब लोग एक से हैं । स्कूल में एक ही गुरु से एक ही कक्षा में विद्या पढ़ते हैं, परन्तु परीक्षा में परिणाम एक सा नहीं होता । कोई प्रथम श्रेणी में पास, कोई द्वितीय में और कोई तृतीय में पास होता है । इस पर भी कुछ फेल हो जाते हैं । इसका एक कारण है कि सब का मनोबल एक सा नहीं होता । इस ज्ञान के समुद्र में कोई पैरों के पंजे तक घुस कर ही डरके मारे लौट आते हैं । कोई घुटने तक, कोई कमर तक और कोई छाती तक घुस कर स्नान कर पाते हैं । क्योंकि अन्दर घुसने का साहस नहीं हैं । वे गोता लगाकर नहीं तैर पाते ।

कोई स्वरावली याद कर लो उससे संगीत नहीं आता । कोई निदान याद करलो, तो चिकित्सक नहीं हो सकते । कोई सिद्धान्त याद कर लो तो वैज्ञानिक नहीं बन सकते । सिद्धान्त को व्यवहार में लाना (Processing) सीखना पड़ेगा । आप अच्छी से अच्छी मोटरकार खरीद लें, कोई फायदा नहीं पा सकते यदि ड्राइविंग नही आता । कार खड़ी रहेगी । जो रुपया लगा दिया वह भी बेकार हो गया । जीवन में प्रत्येक सिद्धान्त ऐसा ही है । सिद्धान्त जानिये फिर उसका व्यवहार में प्रयोग कैसे हो ? यह भी जानना जरूरी है । आप डाक्टर से दवा ले आये । अब क्या करें ? खायें-पियें मालिश करें, सूघें या भाप लें ? बहुत से सवाल खड़े हो जायेंगे । यदि एक बात जान भी लें—यह दवा खाने की है । तो भी काम नहीं चलेगा । कब-कब खायें ? गरम पानी से, ठंडे पानी से, दूध से या चाय से ? कैसे खाई जाय ? इसलिये प्रयोग विधि का परिज्ञान आवश्यक है ।

हर काम कह देने मात्र से नहीं होता । अध्ययन, अध्यापन यज्ञ करना और कराना, देना और लेना ब्राह्मण का कर्त्तव्य है । लेकिन क्या इतनी जानकारी से कोई ब्राह्मण हुआ ? नहीं हुआ । फैजी अकबर के दरबार का प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् था । धोखा देकर गुरु से पढ़ा । अपने को ब्राह्मण का बेटा कहता रहा । और जब पढ़कर विदा हुआ तो गुरु की बेटी को भी धोखा देकर ले आया । एक विद्यार्थी ब्राह्मण का बेटा है । पढ़ने गया तो गुरुजी के चरण छूने को गया, और चाकू से पेट फाड़ आया । क्योंकि गुरुजी ने परीक्षा में नकल करने से रोका था । क्या यह अध्ययन हुआ ?

अध्यापन की भी यही दशा है। विद्यार्थी को पढ़ाते तभी हैं, जब वह ट्यूशन फीस दे। ट्यूशन फीस देने वाले को नकल करने में सहायता देते हैं। लड़की का ट्यूशन किया तो उसके साथ विवाह करने की जिद ठानली। क्या यह अध्यापन है? नहीं है।

इतिहास को देखिये धर्मशास्त्र में लिखा है—विवाह करना धर्म है। काशी के राजा हरिश्चन्द्र ने एक विवाह किया। कन्नोज के राजा विश्वामित्र ने दो पत्नियां ब्याह लीं। अयोध्या के राजा दशरथ ने तीन ब्याह लीं। क्या यह विवाह ठीक थे? एक, दो तीन पत्नियों के भिन्न-भिन्न फल हुए। धर्म सुख के लियें होता है। क्या इन विवाहों से सुख मिला? हरिश्चन्द्र विश्वामित्र, दशरथ में कौन सा ठीक है? कौन सी जिन्दगी खूब सूरत लगती है? जो खूब सूरत है वही ठीक है। वही धर्म है।

धर्म शास्त्रों में लाखों सदाचारों का विधान है परन्तु उनका व्यवहार कैसे हो? यही कठिन है। सत्य बोलो, यह धर्म है। परन्तु इतना जान लेने से काम नहीं चलता। किसी अन्धे को आप 'ओ अन्धे'! कह कर बुलायें तो वैर बढ़ेगा। इस लिये सत्य बोलिये परन्तु प्रिय बोलिये या मत बोलिये। प्रिय बोलने के लिये झूठ भी मत बोलिये तब धर्म होता है। बड़ी ट्रेनिङ्ग चाहिये, तब सत्य बोलना आता है। दान देना ठीक है, धर्म है। मैं एक बार प्रयाग राज गया। त्रिवेणी पर स्नान कर रहा था। एक साहब ने पंडाजी को अपनी पत्नी दान कर दी और फिर पंडाजी से बोले—'अब मुझे बेच दो'। पंडा ने कहा—हाँ बेचूंगा पर एक हजार रुपयें लूंगा। दान देने वाले साहब के पास एक हजार रुपयें नहीं थे। क्या करें? बहुत गिड़ गिड़ाये। पर पंडाजी ने दाम न गिराये। आखिर दस्तावेज लिखने पर समझौता हुआ। क्या यह दान था?

धर्म के हर मुद्दे पर ऐसे ही रोज़गार धूर्त लोग फैलाते हैं। भारत का इतिहास देखिये ईस्वी सन् ६ से १५ तक धर्म के नाम पर चरित्र हीनता और भ्रष्टाचार ही हो रहा था। सोमनाथ के मन्दिर की देव दासियां। काशी के गङ्गास्नान पर काशी करवट। सिद्धों के आश्रमों में सिद्धयान और लिङ्गयानों के पापकर्म से जनता ऊब उठी। चौरासी सिद्ध, उन के भण्डा-फोड़ने के लिये उन्हीं के शिष्य गुरु गोरखनाथ हुये। कबीरदास का भी सुधारवाद चला। रविदास का भी। मारवाड़ की ओर से सन्त जम्भेश्वर की वाणी भी बुलन्द हुई, परन्तु धूर्तों का व्यापार न उखड़ा। धर्म के नाम पर पापों का बाजार चलता ही रहा। इस समय उन्नीसवीं ईसा की शताब्दि में गुजरात में ऋषिदयानन्द का आविर्भाव हुआ।

ऊपर के क्रान्तिकारी सन्त सुधारक तो थे, परन्तु विद्वान् और तार्किक न थे। उनके आन्दोलन को तार्किक धूर्तों ने जमने न दिया। शास्त्रों के मनमाने अर्थ बता कर जनता का शोषण होता ही रहा। दूसरे, उन सब सुधारकों ने अपने-अपने नाम से नये-नये सम्प्रदाय खड़े किये, इसलिये मूर्ख चेलों में साम्प्रदायिक द्वेष बढ़ा। जहां वैर है, वहाँ लोकप्रियता और जनहित नहीं रहता। इस लिये एक विद्वान् तार्किक सुधारक की ही आवश्यकत्ता थी। ऋषिदयानन्द ने वह पूरी कर दी।

सन् १८७८ ई० में ऋषिदयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश लिखा। उसका दूसरा परिष्कृत संस्करण १८७२ ई० फिर छपा था। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है—

"इस में यह अभिप्राय रखा गया है कि जो जो सब मतों में सत्य बातें हैं, वे सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके जो जो मत मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन उन का खण्डन किया है।"

स्वाभाविक है कि इन मिथ्या बातों से जो लोग फायदा उठा रहे थे, वे नाराज होते। उन लोगों ने दयानन्द को भी एक सम्प्रदाय का संस्थापक सिद्ध करने का प्रयत्न किया ताकि साम्प्रदायिक झगड़े इसके खिलाफ भी भड़कें परन्तु ऋषिदयानन्द ने स्वयं स्पष्ट किया—"मेरा कोई नवीन कल्पना वा मत मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं हैं। किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उस को छोडना छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।"

—स्वमन्तव्यामन्तव्य

इसलिये साम्प्रदायिक वैमनस्य को यहां स्थान न मिला। शास्त्रों के प्रमाण खोज-खोज कर ऋषिदयानन्द ने ऐसे तार्किक आधार पर प्रस्तुत किये कि मिथ्याचारियों का सट्टा न चल सका। उन्होंने कहा—

"अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुये ईश्वरादि पदार्थ हैं, जिनको मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूं।"

—स्वमन्तव्यामन्तव्य

इस प्रकार ऋषिदयानन्द का कार्य एक आन्दोलन था। कोई साम्प्रदायिक स्थापना नहीं। वैदिक धर्म एक प्राचीन धर्म था। उसे ही उन्होंने विज्ञान, तर्क और कला के द्वारा परिमार्जित किया। सत्यार्थ प्रकाश का प्रत्येक समुल्लास अपने विषय की व्यावहारिक प्रयोग विधि की ट्रेनिंग है। ईश्वर की पूजा कैसे की जाय ? बालकों को शिक्षा कैसे दी जाय ? शिक्षा क्या है ? समावर्तन, विवाह, गृहाश्रम क्या हैं, उन्हें कैसे व्यवहार में लाया जाय ? आदि दस समुल्लासों में प्रतिपादित है ग्यारहवें में हिन्दू धर्म के सारे मिथ्या सम्प्रदायों की ही पोल पहिले खोली। बारहवें में नास्तिक सम्प्रदायों का खण्डन है जिनमें जैन, बौद्ध और चार्वाकादि हैं। तेरहवें में ईसाई मत की आलोचना और चौदहवें में इस्लाम की यही वे भेड़िये थे जो हिन्दूओं को हड़पने की ताक में थे।

हिन्दू-समाज की रक्षा के लिये ऋषिदयानन्द का सत्यार्थ प्रकाश एक ऐसी आचार संहिता है, जिसमें खरे-खोटे को क्रियात्मक जीवन में लाकर उन्होंने स्पष्ट कर दिया। झूठी श्रद्धा, झूठा विश्वास पैदा करती है। सम्प्रदाय गुरुडम पर चल रहे थे। परन्तु सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि ने कहा कि तर्क और प्रमाणों की कसौटी से गुरु को भी माफ नहीं किया जा सकता। उन्होंने प्राचीन धर्म शास्त्र का स्मरण कराया---

'यान्यनवद्यानिकर्माणि तानित्वयोपास्यानि नो इतराणि' देश, काल, और पात्र में सत्य को भी फिट कर के देखो, यदि वह फिट होता है, तो उपादेय, अन्यथा वह सत्य भी छोड़ो। भोजन के समय सैन्धव का अर्थ घोड़ा समझना भी मूर्खता है। भले ही वह अर्थ सत्य है।

महाभारत में कहा था—"यस्तर्केणानुसन्धते स धर्मं वेदनेतरः"। धर्म को बौद्धिक होना चाहिये। वेद का वही अनुशासन है 'बुद्धि—'बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्मन्त्रोवेदे' गायत्री मंत्र में वही कामना है 'धियो योनः प्रचोदयात्'। कठोपनिषद् में यही अन्तिम सिद्धान्त कहा गया है—'जब पांचो ज्ञानेन्द्रियां और मन बुद्धि में एकाग्र हो जायें तब अन्तिम निर्णय होता है।'[1]

ऋषिदयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में कहा कि मैं यहां धर्म नहीं लिख रहा हूं, वह धर्म तो वेदों में लिखा ही है। धर्म को कैसे पहिचाना जाय ? यह बताना ही सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। इसलिये हम सत्यार्थ प्रकाश को Process book कहें तो उपयुक्त होगा। धर्म का व्यवहार कैसे हो ? सत्यार्थ प्रकाश में इसी प्रश्न का उत्तर है'।

पिछले सौ वर्ष में करोड़ों लोगों ने विश्व में उससे मार्ग दर्शन लिया है। रोगों के नुस्खे तो पुराने लिखे हुये वेदों में हैं; उन्हें कैसे पहिचानें, कैसे काम में लायें ? सत्यार्थ प्रकाश में इसी उलझन का समाधान है। वह धर्म ग्रन्थ नहीं; समन्वय की संहिता है। धर्म ग्रन्थ तो वेद थे, आज तक वे ही हैं। मनु ने कहा था—'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्''। आर्य समाज के सम्पूर्ण आन्दोलन का सार यही है। किसी नये धर्म या सम्प्रदाय की स्थापना नहीं।

वैदिक धर्म में सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, अर्थशास्त्र ज्योतिष, और विज्ञान, सभी का समावेश है। क्योंकि मनुष्य जीवन की परिधि में सभी का अन्तर्भाव है। ऋषिदयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में उन सभी विषयों पर ऊहापोह की। गत सौ वर्षों में प्रत्येक दिशा में जो विकास हुआ है, उसमें Processing सत्यार्थ प्रकाश का ही है। इसीलिये विश्व की सम्पूर्ण भाषाओं में सत्यार्थ प्रकाश के अनुवाद का स्वागत हुआ है। ऋषिदयानन्द ने निरुक्त में ही हुई विद्या की अभिलाषा पूर्ण कर दी।

---

१. यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहु: परमां गतिम् कठ ॥
—स० प्र० समु० ६०

'स्वराज्य' का बीजारोपण करने वाला ग्रन्थ !

—प्रिंसिपल ओमप्रकाश, नई दिल्ली

'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।···प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं।'

सर्वप्रथम स्वराज्य का घोषनाद

सत्यार्थ प्रकाश ने यह घोषनाद उस समय किया था, जब भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यशाही की जड़ें पाताल तक पहुंच चुकी थीं, जब स्वतन्त्रता की बात करना राजद्रोह समझ जाता था, जब भारत को स्वराज्य दिलाने का श्रेय लेने वाली 'इण्डियन नैशनल कांग्रेस' बनी नहीं थी, जब 'स्वराज्य-आन्दोलन' के सबसे बड़े नेता कहलाने वाले महात्मा गान्धी अभी ५-६ वर्ष के बच्चे थे और जब विदेशो में जा 'आजाद हिन्द सेना' बनाकर अँग्रेजों को भारत को स्वराज्य देने पर बाध्य करने वाले नेताजी सुभाष का अभी जन्म नहीं हुआ था। डॉ० श्याम प्रसाद मुखर्जी के शब्दों में 'महर्षि दयानन्द ने अपने दर्शन सत्यार्थ प्रकाश में एक स्वतन्त्र भारत की कल्पना की थी जिसमें स्वकीय संस्कृति तथा सभ्यता की अमूल्य परम्पराएँ अक्षुण्ण रहें।' लोकमान्य तिलक ने सत्यार्थ प्रकाश के रचयिता को 'स्वराज्य का सर्वप्रथम सन्देश-वाहक' कहा था और स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने 'स्वाधीनता संग्राम का सर्व प्रथम योद्धा।'

सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम प्रकाशन सन् १८७५ के आरम्भ में हुआ। उसकी रचना की योजना तो १८६३ से आरम्भ हो चुकी थी। उस समय भारत में विदेशी सरकार का भारी आतङ्क छाया हुआ था। आर्य (हिन्दु) जाति पूरी तरह निराश हो चुकी थी। भारत की आत्मा मानो सो चुकी थी। समाज कुरीतियों एवं अन्ध विश्वासों के वशीभूत होकर जर्जरित हो चुका था। कोई मार्ग दिखाई नहीं देता था। एकदिव्य द्रष्टा महर्षि ने, जो आर्यावर्त्त के प्राचीन ऋषि-मुनियों का उत्कृष्टतम प्रतिनिधि था, आर्य जाति को हिलोरे दे देकर उस समय जगाना आरम्भ किया और उसका आधार-ग्रन्थ बना 'सत्यार्थ प्रकाश'!

सत्यार्थ प्रकाश के दूर-द्रष्टा लेखक ने भारत के कोने-कोने में घूम कर व्याख्यानों एवं शास्त्रार्थों द्वारा जहां 'स्वधर्म, स्वदेशी, स्वभाषा, स्व-संस्कृति' का प्रचार किया, वहां उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश लिखकर इन उदात्त भावनाओं के स्थिरीकरण की योजना बनाई। और इन सबके मूल में था 'स्वराज्य' का तीव्र स्वर, क्योंकि उनका दृढ़ मत था कि देश में अपना राज्य हुए बिना न ठीक प्रकार से ईश्वर की भक्ति हो सकती है, न धर्म का प्रचार; न राष्ट्र में सम्पन्नता आ सकती है, न समाज का सुधार किया जा सकता है और न सच्ची मानवता ही पनप सकती है।

१८५७ की पृष्ठ भूमि

सत्यार्थ प्रकाश की रचना में सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम की विफलता की पृष्ठ भूमि का बहुत बड़ा हाथ है। संसार के इस अनूठे ग्रंथ के प्रतिभावान् लेखक उस समय ३३ वर्ष के बाल ब्रह्मचारी तेजस्वी युवक थे। वे सच्चे शिव की खोज में घर छोड़ चुके थे; सांसारिक इच्छाओं से उन्हें कोई मोह नहीं रहा था। वे अपने हृदय में 'मानव के कल्याण का मार्ग' ढूंढने की प्रबल आकांक्षा लिए जब देश के नगरों, ग्रामों, वनों, पर्वतों, गुफाओं, नदियों में से, अनेक कष्ट सहते हुए, गुजर रहे थे, तो उन्होंने भारत की, आर्य जाति की दयनीय दशा को खुले नेत्रों से देखा और देखा विदेशी शासन की निर्दयता को, अन्याय अत्याचार के भयावह चक्र को। उनकी आत्मा कराह उठी। १५ अगस्त, १८७५ को पूना में दिए गए व्याख्यान में उन्होंने 'स्वजीवन-चरित्र' सम्बन्धी जो चर्चा की थी, उसमें उन्होंने १८५७, ५८ व ५९ का वर्णन तक नहीं किया। केवल इतना कहा, 'मैं इन तीन वर्षों में नर्मदा के तट पर तथा इधर-उधर ही घूमता रहा" और १८६० के जीवन की घटनाएं आरम्भ कर दी। उनके अन्त के शब्द हैं—'मेरी अन्तःकरण से यही कामना है हमारा निद्रित देश जाग उठे।'

वास्तविकता यह है कि वे उस समय विदेशी शासन के विरुद्ध विकराल स्वतन्त्रता-संग्राम का गुप्तरूपेण, साधु के वेष में, नेतृत्व कर रहे थे। इसका प्रबल प्रमाण भारत सरकार द्वारा अनेक बार प्रदर्शित वह डाकुमेंटरी फिल्म है, जो आर्य समाज शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में अप्रैल १९७५ में भारत सरकार द्वारा बनाई गई थी और जिसमें सन् ५७ के युद्ध के सेनानियों रानी झांसी, तात्या टोपे नाना साहब तथा अजीमुल्लाखां के चित्र दिखाकर कहा गया था कि महर्षि दयानन्द का उनसे सम्पर्क था।

सत्यार्थ प्रकाश के शब्द 'जब सम्वत् १९१४ (अर्थात् सन् १८५७) के वर्ष में तोपों के मारे, मन्दिर, मूर्तियां अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्ति कहां गई थी ··? जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और वे भागते फिरते। इस पृष्ठ भूमि का संकेत स्पष्टतः कर रहे हैं कि महर्षि स्वराज्य-प्राप्ति को कितना अधिक महत्व देते थे, प्रसंग-प्रसंग में किसी न किसी तरह इस भावना की प्रेरणा जन-जन को देते थे। मूर्ति-पूजा-निषेधक प्रसंग तक में १८५७ की चर्चा स्पष्ट करती है कि दिव्य पुरुष दयानन्द १८५७ के अत्याचारों का बदला लेने के लिए अंग्रेज को भारत से निकालने के लिए भारतीय जनमानस को तैय्यार कर रहे थे और वह भी महाभारत-युद्ध के विजेता श्री कृष्ण का नाम लेकर! महात्मा गान्धी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का नारा तो १९४२ में लगाया था, पर सत्यार्थ प्रकाश ने १८७५ मे उसकी नींव रख दी थी।

स्वतन्त्रता-आन्दोलन को प्रेरणा

भारत के यशस्वी प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री ने आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली राज्य, द्वारा आयोजित ऋषि निर्वाणोत्सव के अवसर पर १९६५ में कहा था, 'स्वराज्य और स्वदेशी की ऐसी लहर महर्षि दयानन्द ने चलाई, जिससे इण्डियन नेशनल कांग्रेस के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार हो गई।" और कांग्रेस-आन्दोलन में तेजी तब आई जब सत्यार्थ प्रकाश की 'स्वराज्य भावना' से प्रेरणा पाने वाले श्री गोविन्द राना डे, श्री गोपाल कृष्ण गोखले, पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, पं० राम प्रसाद बिस्मिल, अमर शहीद भगतसिंह जैसे धीर-वीर महापुरुष स्वतन्त्रता-संग्राम में कूद पड़े। मौलाना हसरत मोहानी तक के मुंह से निकला था—'लगभग ९० प्रतिशत आर्य समाजी स्वराज्य के कार्यों में हिस्सा लेने वाले लीडर थे, जबकि अन्य सोसाइटियों के मुश्किल से २-३ प्रतिशत आदमी ही स्वराज्य का काम करते थे।' सत्यार्थ प्रकाश से प्रेरणा प्राप्त कर गुरुकुल कांगड़ी और डी० ए० वी० के रूप में चले राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलनों के युवकों ने अंग्रेज की नींद हराम कर दी थी।

भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए धधकती ज्वाला हृदय में रखने वाले युग पुरुष ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में आर्यों के चक्रवर्ती राज्य की याद देशवासियों को दिलाई और उन में नई चेतना भरने के लिए लिखा,—'सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती, सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं,

'आर्यावर्त्त में भी आर्यो का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन और निर्भय राज्य इस समय नहीं है।" स्वराज्य-भावना की अग्नि को तीव्र करने के लिए ही महर्षि दयानन्द ने कई छावनियों में आर्य समाजें स्थापित कीं और देशीय राजाओं को संगठित करने के लिए वे रियासतों में गए। कई उच्च राज्याधिकारी उनके प्रमुख शिष्यों में थे। उनकी उत्तराधिकारिणी 'परोपकारिणी सभा' के प्रधान उदयपुराधीश महाराणा सज्जनसिंह वर्मा थे, उपसभापति

एक्स्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर लुधियाना लाला मूलराज थे, मन्त्री मेवाड़ के कविराज श्यामलदास थे तथा सदस्यों में बिजनौर के डिप्टी कलैक्टर राजा जयकृष्ण दास, मैम्बर कोंसल गवर्नर बम्बई राय बहादुर पं० गोपाल राव आदि थे।

'पूर्ण स्वतन्त्रता' का नारा १८७३ में

सत्यार्थ प्रकाश के ओजस्वी लेखक जब प्रचार-कार्य करते-करते १८७३ में कलकत्ता पहुंचे, तो वहां के लाट पादरी ने, जो प्रायः उनके भाषणों में सभापति का आसन ग्रहण करते थे तथा उनके व्यक्तित्व एवं विद्वत्ता से प्रभावित थे, महर्षि की भेंट भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड नार्थ ब्रुक से करवाई। राजभवन में बात-चीत के मध्य जब वायसराय ने 'देश पर अखण्ड अंग्रेजी शासन के लिए भगवान् से प्रार्थना' अपने भाषणों में करने की बात देव दयानन्द से कही, तो निर्भीकता की उस मूर्त्ति का उत्तर था—'मैं ऐसी किसी बात को मानने में असमर्थ हूं, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबाध राजनीतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। श्रीमान् जी ! ईश्वर से नित्य सायं प्रातः उसकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही मैं प्रार्थना करता हूं।" इस पर वार्तालाप बन्द हो गया। लार्ड नार्थ ब्रुक ने यह घटना अपनी एक साप्ताहिक डायरी में इण्डिया आफिस लण्डन भेजी और मलका विक्टोरिया की सरकार के सैक्रेटरी आफ स्टेट को लिखा कि उसने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी करने के लिए गुप्तचर नियुक्त करने के आदेश दे दिए हैं। १० वर्ष पश्चात्, जोधपुर में विष दिलाकर उनकी जीवन-लीला समाप्त करने के षड्यन्त्र का आधार सम्भवतः यही घटना बनी।

इसलिए सत्य यह है कि 'पूर्ण स्वतन्त्रता' का नारा सर्वप्रथम सत्यार्थ प्रकाश के निर्भीक रचयिता ने वायसराय नार्थब्रुक के घर पर १८७३ में लगाया था और उसका स्थिर बीजारोपण सत्यार्थ प्रकाश में किया था, जिसे इस घटना के बाद शीघ्र छपवाने की योजना उन्होंने बनाई। कांग्रेस ने इस नारे को १९२९ में पं० जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में दोहराया ही था। परन्तु स्वराज्य का बीजारोपण करने वाले इस चमत्कारी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश' की भावना के विरुद्ध कांग्रेस के नेताओं ने, जिनके हाथ में 'स्वराज्य-आन्दोलन' की बागडोर थी, चूंकि धर्म निरपेक्षपता के ववण्डर में फंस कर साम्प्रदायिकता के आगे झुकने की नीति अपनाई, स्वराज्य अधूरा मिला, भारत के तीन टुकड़े हो गए। और ३२ वर्षो के 'स्वराज्य-काल' में नास्तिकता, अनैनितकता, भ्रष्टाचार जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद आदि की राष्ट्र-घातिनी प्रवृत्तियां पनपती रही हैं।

अतः सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी मनाते हुए हमें 'पूर्ण स्वराज्य' प्राप्त करने तथा 'स्वराज्य को सुराज्य' बनाने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए !!

सत्यार्थ प्रकाश में दार्शनिक उद्भावनायें

—प्रिंसिपल लक्ष्मीदत्त दीक्षित, संस्थापक—आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली

★

प्रत्यक्ष का लक्षण

न्यायदर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण इस प्रकार किया है—"इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकम् प्रत्यक्षम्" । अर्थात इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ऐसा ज्ञान जो व्यपदेश्य न हो, व्यभिचारी न हो और निश्चयात्मक हो प्रत्यक्ष कहाता है ।

परन्तु हम देखते हैं कि इन्द्रियों का अपने अर्थों से सन्निकर्ष रहने पर भी कभी ज्ञान होता है और कभी नहीं । कभी-२ आंखें खुली होने पर भी निकटस्थ पदार्थ को नहीं देख पातीं, कान सुन नहीं पाते त्वचा में संवेदन नहीं होता । वस्तुतः अर्थ के साथ इन्द्रिय का सन्निकर्ष होने और उस विषय के इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होने पर भी उसका ज्ञान तभी होता है जब उस इन्द्रिय को मन का सहयोग प्राप्त होता है। जब आत्मा को किसी बाह्य विषय को जानने की इच्छा होती है। तो वह अपनी इच्छा शक्ति के बल पर मन के भीतर आलोच्य विषय की ओर प्रवहमान विचार तरंग को उत्पन्न करता है । यह विचार तरंग ज्ञान तन्तुओं (सेन्सरी नरवस) में से होती हुई उस इन्द्रिय से जा टकराती है, जिसका वह विषय होता है। इस प्रकार इन्द्रियों का बाह्य विषयों से सम्बन्ध होने पर आत्मा को अभिलाषित ज्ञान होता है। चेतन आत्मा ज्ञाता है। उसके निकट मन आन्तर साधन है जो आत्मा से आदेश पाकर बाह्य—कारणों —इन्द्रियों को अपने कार्य में प्रवृत्त करता है। इस प्रकार आत्मा का मन से, मन का इन्द्रिय से और इन्द्रिय का बाह्य विषय से सन्निकर्ष होने पर ही आत्मा को बाह्य जगत् का प्रत्यक्ष होता हैं, मात्र इन्द्रियार्थ—सन्निकर्ष से उसकी सिद्धि नहीं होती।

बाह्य जगत् के ज्ञान की इस प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में प्रत्यक्ष का लक्षण इस प्रकार किया है—

"इन्द्रियों के साथ मन का, और मन के साथ आत्मा के संयोग से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं ।"

स्वामी दयानन्द की इस स्थापना के आधार पर हमने प्रकाश्य ग्रन्थ 'अनादि तत्व दर्शन' में प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण इस प्रकार किया है—

"आत्मेन्दियमनोऽर्थसन्निकर्षोत्पन्तं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि—व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ।"

ईश्वर का प्रत्यक्ष

प्रत्यक्ष का ज्ञान इन्द्रियार्थसन्निकर्ष से उत्पन्न होता है। परन्तु परमेश्वर तो इन्द्रियों का विषय नहीं है । 'न चक्षुषा गृह्यते, (मुण्डक ३।१।८ जैसे वचन आर्षग्रन्थों में अनेकत्र पाये जाते हैं। फिर भी ऋषि दयानन्द ने ईश्वरसिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण को स्वीकार किया है। यह उनकी निराली सूझ है। अनुमानादि प्रमाणों तथा तर्क के आधार पर तो ईश्वर की सिद्धि सदा से होती आई है। परन्तु ईश्वर के लौकिक प्रत्यक्ष की स्थापना ऋषि दयानन्द की अलौकिक उद्भावना है। इस सन्दर्भ में उनकी एक विलक्षण तथा सर्वथा मौलिक उद्भावना यह है कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं (गुणानां प्रत्यक्षं न गुणिनः—अ. त. द.)। गुणी का प्रत्यक्ष आत्मायुक्त मन से होता है।

इन्द्रियों का विषय से सम्पर्क होने पर उसके सम्बन्ध में भिन २ गुणों की अनुभूतियां होती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय अपने नियत विषय का ग्रहण करती है। जल के प्रत्यक्ष में स्पर्श से शीतलता, जिह्वा से रस चक्षुओं से रुप एवं तरलता आदि की पृथक २ अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। ये अनुभूतियाँ शब्द स्पर्श रुप रस गन्धादि की सूचना मात्र हैं। मन में एकत्र इन सूचनाओं के आधार पर उनके संयोग वियोग से

बुद्धि उन अनुभूतियों के समुच्चय को एक नाम दे डालती है। इसी को विषय का प्रत्यक्ष कहते हैं। एक विशेष प्रकार के रंग-रुप, गन्ध स्वादादि से युक्त पदार्थ को सन्तरा कहते हैं।कुछ भिन्न रुप, गन्ध स्वाद वाले को माल्टा कह देते हैं। हम कहते हैं —'मैंने सेव देखा एक अंगेरज कहता है—मेंने एप्पल देखा फ्रांस का रहने वाला कहता है — मैंने देखा। वास्तव में न किसी ने सेव देखा, न एप्पल और न उस पदार्थ विशेष के मात्र गुणों का प्रत्यक्ष किया। यह प्रत्यक्ष शब्द—निरपेक्ष है। इस पृष्ठभूमि में महर्षि के कथनानुसार ईश्वर का प्रत्यक्ष सहज ही समझ में आ जाता है। वह लिखते हैं—

अब विचारना चाहिए कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है। गुणी का नहीं। जैसे त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श रूप-रस—गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है। वैसे ही प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि कर्म और ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। —समु. प्र. स. ७

गुण अनिवार्यतः गुणी में रहते हैं.। अतः गुण-गुणी समवाय सम्बन्ध होने से गुणों के साथ गुणी का प्रत्यक्ष मान लिया जाता है। आशुगतित्त्वान्मनसः मन के आशुगति होने से यह प्रक्रिया इतने वेग से होती है कि हम गुणी का ही प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। वास्तव में गुण निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा जाने जाते हैं और उसके पश्चात् सविकल्प प्रत्यक्ष द्वारा गुणी का वोध होता है। इस प्रकार लिंगों के द्वारा लिंगी परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है। यह इन्द्रियों के माध्यम से आत्मायुक्त मन से इश्वर का प्रत्यक्ष है। अपने से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ प्रभु से जीव इतनी अपेक्षा तो कर ही सकता है कि वह उसे (जीव) को समय समय पर किं कर्म किमकर्म—कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्देश करता रहे। यह कार्य परमेश्वर निश्चित रुप से करता रहता है। इस विषय में स्वामी दयानन्द की मान्यता है —

ईश्वर के प्रत्यक्ष में एक अन्य तर्क स्वामी जी प्रस्तुत करते हैं। जैन मत की आलोचना के प्रसंग में स्वामी जी लिखते हैं—

"जो पापाचरणेच्छा समय में भय' शंका और लज्जा उत्पन्न होती हैं, वह अन्तर्यामी परमात्मा की ओर से हैं। इससे भी परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है।" (सं. प्र. समु. १२)

इस प्रकार की अनुभूति में परमात्मा का ही प्रत्यक्ष होता है इस मान्यता का विशदीकरण स्वामी जी ने सातवें समुल्लास में इस प्रकार किया है—

"जब आत्मा मन को और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकारी आदि अच्छी बात करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उसी क्षण आत्मा से बड़े काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, और निःशंकता, और आनन्दोत्साह उठता, है वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।"

परमेश्वर का यह प्रत्यक्ष बाह्य इन्द्रियों के माध्यम से न होकर सीधा आत्मायुक्त मन से होता है। मन आन्तर इन्द्रिय है। जिसे अन्य लोग अन्तश्चेतना, अन्तः प्रेरणा आदि नामों से अभिहित करते हैं, ऋषि दयानन्द उसे इश्वरीय प्रेरणा मानते हुए उसके द्वारा परमात्मा का मानस प्रत्यक्ष मानते हैं।"

इद्रियों के माध्यम से होने वाले लौकिक प्रत्यक्ष तथा आत्मायुक्त मन से होने वाले मानस प्रत्यक्ष के अतिरिक्त स्वामी जी एक तीसरे—योगज प्रत्यक्ष को भी मानते हैं। वह लिखते हैं —

"जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर होता है, उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं।"(समु.७)

पुनः जैनमत की समीक्षा के सन्दर्भ में वह लिखते हैं—

"शुद्धान्तःकरण, विद्या और योगाभ्यास से पवित्र आत्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे विना पढ़े विद्या के प्रयोंजन की प्राप्ति नहीं होती, वैसे ही योगाभ्यास और विज्ञान के विना परमात्मा भी नहीं दीख पड़ता।" (समु.१२)

यह विशुद्ध आत्मा द्वारा आत्मा में परमात्मा का प्रत्यक्ष है—. साक्षात्कार है।

ईश्वरीय शिक्षा—

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र होने के कारण कर्तुमकर्तुमन्यथा-कर्तुम् समर्थ है। वह परमेश्वर के हाथ की कठपुतली नहीं, जो "राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करत अन्यथा अस नहीं कोई॥" यदि जीव को परमेश्वर के इशारों पर ही नाचना पड़े, तो समस्त पाप-पुण्य का फल भी उसी को भोगना पड़े। परन्तु वह तो 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट' है। वह प्राणियों को अशुभ कर्मों से निवृत्त करने अथवा शुभ कर्मों में प्रवत्त करने में अपने बल का प्रयोग नहीं कर सकता। इसी प्रकार अविद्या अस्मिता राग-द्वेष तथा अभिनिवेश इन पंच क्लेशों आदि से रहित परमेश्वर है।

—शेष पृष्ठ-५४ कालम दो

सत्यार्थ प्रकाश का दर्शन

—विद्या भूषण पं० ओंकार मिश्र "प्रणव" शास्त्री

★

सत्यार्थ प्रकाश महर्षि दयानन्द के मौलिक ग्रन्थों में से सर्व प्रसिद्ध, विशाल तथा क्रान्तिकारी ग्रन्थ है। विक्रमकी बीसवीं शताब्दी में प्रणीत इस महान् ग्रन्थ ने संसार में एक अजीब हलचल सी मचा दी है। धर्म के नाम पर प्रचलित मत-सम्प्रदायों में एक भूचाल सा आ गया है तथा इस गौरवशाली ग्रन्थ के अकाट्य तर्क-तीरों से प्रभावित होकर पुरातन रूढ़ीवादी मनुष्य अपने-अपने ग्रन्थों में परिवर्तना करने लगे हैं। अन्ध-परम्पराओं की मान्यतओं की भित्तियाँ भी हिल रही हैं। ग्रन्थ के प्रणेता महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रस्तुत ग्रन्थ के लिखने में कितना प्रयास, परिश्रम एवं साधना की है यह सब ग्रन्थ के मननपूर्वक आद्योपान्त अध्ययन से ही जाना जा सकता है। यदि पूर्ण निष्पक्ष भाव से विचार किया जाये, तो स्पष्टतः ज्ञात होता है कि महर्षि ने इस ग्रन्थ का निर्माण लोक-कल्याण कामना से ही किया है। जैसा कि महर्षि द्वारा ग्रन्थारम्भ में लिखित भूमिका से लक्षित होता है—

"मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है, उसको सत्य और जो मिथ्या है, उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता, जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है .... इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है, कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरुप समर्पित कर दे। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें"

स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द सत्य अर्थ का प्रकाश कर मनुष्य मात्र की मंगल-कामना कर रहे हैं। ग्रन्थ-लेखन का उद्देश्य तो ग्रन्थ के नाम से ही परिलक्षित हो रहा है। महर्षि दयानन्द सत्य के कितने पक्षधर, समर्थक एवं प्रचारक थे यह तो उनके द्वारा निर्धारित आर्य समाज के दस नियमों में से आद्य पांच नियमों में समागत सत्य शब्द की चर्चा से सिद्ध हो जाता है। सत्यार्थ प्रकाश के विभागों को समुल्लास की संज्ञा दिया जाना भी एक विचित्र तथा सार्थक सूझ है। ग्रन्थ-विभाजन के लिए अध्याय, अनुच्छेद, परिच्छेद, काण्ड, सर्ग तथा उल्लास आदि नाम तो प्राचीन काल से प्रचलित हैं, किन्तु समुल्लास शब्द का प्रयोग तो सर्वदा नवीनतम ही प्रतीत होता है। वस्तुतः सम् पूर्वक उल्लास शब्द का प्रयोग सत्य अर्थ का प्रकाश हो जाने के उपरान्त मानव की स्वाभाविक अन्तः स्थिति का विश्लेषण करता है, अर्थात् सत्य के स्वरुप का ज्ञान हो जाने के अनन्तर सब प्रकार के उल्लास (प्रसन्नता) का होना भी अत्यन्त सहज है।

ग्रन्थ-लेखन में महर्षि की साधना एवं श्रमशीलता के परिचय के लिए इतना ही प्रर्याप्त होगा कि सम्पूर्ण "सत्यार्थ प्रकाश" में प्रमाण स्वरुप प्रस्तुत ग्रन्थों की संख्या ३८७ है अर्थात् ऋषिवर ने लगभग चार सौ ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन एवं मनन के पश्चात् ही ग्रन्थ को लिखना आरम्भ किया है। इस विषय में थोड़ा सा विचार कीजिए कि आज से १०३ वर्ष पहले भारत के किस पुस्तकालय में बैठकर ऋषिवर को चार सौ ग्रन्थ पढ़ने तथा उनका नोट्स लेने का समय कैसे, किस प्रकार, कहाँ मिला होगा ? क्या उल्लिखित सभी ग्रन्थ कहीं एक ही पुस्तकालय में ऋषिवर को अनायास प्राप्त हो गये होंगे ?

अब पाठक वृन्द लेख के शीर्षक के आधार पर संक्षिप्त रुपेण विचार पढ़ने का कष्ट करें। इस स्थल पर "दर्शन" से तात्पर्य दर्शन विषयता से है। यों तो सम्पूर्ण ग्रन्थ ही दार्शनिक पृष्ठभूमि में लिखा गया है, किन्तु विशेषतः ग्रन्थ के पांच स्थल दार्शनिक धरातल पर ही अवलम्बित हैं, जो कि इस प्रकार हैं—(१) प्रथम समुल्लास (२) तृतीय समुल्लास (३) सप्तम समुल्लास (४) अष्टम समुल्लास (५) नवम समुल्लास। इनमें से प्रथम समुल्लास के प्रारम्भ में महर्षि ने मंगलाचरण रुप में प्रस्तुत मन्त्रों द्वारा "ऋतं वदिष्यामि सत्यं

वदिष्यामि" की घोषणा करते हुए ईश्वर के अनन्त नाम होने की चर्चा की है, किन्तु ऋषि दयानन्दईश्वर का मुख्य नाम 'ओ३म्' ही मानते हैं, जो कि श्रुति उपनिषद् तथा पवित्र दार्शनिक ग्रन्थों में व्याख्यात् है। इसी की पुष्टि में प्रकृत स्थल में अनेक प्रमाणों को उद्धृत किया गया है।

साथ ही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, आदित्य, सूर्य, चन्द्र, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, पृथ्वी, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, काल, यम, देवी, सरस्वती, लक्ष्मी, भगवान्, नारायण आदि परमेश्वर के सौ नामों की चर्चा है। किन्तु हरि, राम, कृष्ण आदि नामों का वहाँ उल्लेख नहीं है। क्योंकि ये नाम वेदों में कहीं भी ईश्वर के पर्यायवाची रुप में प्रयुक्त नहीं है। सौ नामों की व्याख्या के बाद महर्षि लिखते हैं—ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं परन्तु ईनसे भिन्न परमात्मा के जैसे अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म, स्वभाव का एक-एक नाम है। इससे मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं। . . . . . प्रभु के ओ३म् नाम के वैशिष्ट्य में एक प्रधान हेतु यह भी है कि परमात्मा के अन्य गौणिक नाम परमात्मा से इतर अन्य पदर्थों के भी हैं किन्तु व 'ओ३म' प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का नाम नहीं है। महर्षि इसी नाम को मान्यता प्रदान करते हुए प्रत्येक मनुष्य को इसी के जपन, मनन तथा चिन्तन की पावन प्रेरणा दे रहे हैं।

तृतीय समुल्लास में महर्षि ने बालकों के अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया प्रस्तुत की है। इस प्रक्रिया के अनुसार ऋषिवर ने विद्वान् धार्मिक सदाचरी परोपकारी शिक्षकों द्वारा गुरुकुलीय प्रणाली से शिक्षा का प्रावधान किया है। शिक्षा सम्बन्धी ग्रन्थों की सत्य परीक्षा के लिए उहोंने जो पांच निकषाएं प्रदर्शित की हैं उनमें पांचवीं निकषा प्रमाण को ही माना है। न्याय दर्शन के आधार पर ऋषिवर ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, असम्भव तथा अभाव इन आठ प्रमाणों की मीमांसा उपस्थित की है। तदनन्तर वैशेषिक दर्शन के अनुरुप द्रव्य, गुण, कर्म, सामाय, विशेष समवाय इन छः पदार्थों का विशद विवेचन लक्षणं प्रमण्णाम्परंवस्तु सिद्धिर्नतु प्रतिज्ञामात्रेण" के आधार पर प्रस्तुत किया है। इस दाशनिक विवेचन का तात्पर्य यह है कि शिक्षार्थियों को भाषा-ज्ञान के उपरांत ही उनकी सामर्थ्यानुसार इन वैज्ञानिक दार्शनिक विषयों का परिज्ञान कराना भी अत्यन्त आवश्यक है। अध्ययन-अध्यापन एवं दर्शन-क्षेत्र में महर्षि आर्ष ग्रंथों के पठन-पाठन को ही महत्ता प्रदान करते हैं। आर्ष ग्रंथों के अध्ययन को मुख्यता इसीलिए प्राप्त है कि इनके अध्ययन से अल्प परिश्रम से अधिक लाभ की संभावना है।

सप्तम समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने ईश्वर तथा वेद विषयक व्याख्यान प्रस्तुत किया है। ईश्वर के विषय में विचारधारा प्रवाहित करते हुए ईश्वर को अनादि तत्त्व माना है। इसके साथ ही जीव और प्रकृति को भी ईश्वर के साथ ही अनादि मान्यता प्रदान की है। इस प्रसंग की पुष्टि में वेदादि सत्य शास्त्रों के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं। इन्हीं प्रमाण सरणी में यह सिद्धांत भी प्रस्फुटित है कि ईश्वर सर्वथा एक है। क्योंकि वह सर्वव्यापक है सर्वव्यापक एक ही होना चाहिए। वही ईश्वर इस सम्पूर्ण सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता एवं संहर्त्ता भी है। वही ईश्वर निराकार सर्वशक्तिमान, निर्विकारसच्चिदानंद स्वरुप अजर, अमर, अभय, अनंत एवं नित्य पवित्र है।

महर्षि पातञ्जल द्वारा योग दर्शन में प्रतिपादितः—

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः"

के अनुसार ईश्वर अविद्यादि पञ्च क्लेश, कुशल-अकुशल ईष्टानिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की सत्ता रहित सब जीवों से विशिष्ट है। ईश्वर तथा जीव की भिन्नता महर्षि की प्रश्नोत्तर प्रणाली द्वारा कितनी युक्तियुक्त एवं स्पष्ट है कृपया ध्यान से पढ़ें—

प्रश्नः-- जीव और ईश्वर का स्वरुप गुण कर्म स्वभाव कैसा है ?

उत्तरः— दोनों चेतन स्वरुप हैं स्वभाव दोनों का पवित्र अविनाशी और धार्मिकता आदि है परंतु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय, सबको नियम में रखना, जीवों को पाप-पुण्यों का फलदेना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीवों के संतानोत्पत्ति उनका पालन शिल्पविद्या आदि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्य ज्ञान, आनन्द, अनन्तबल आदि गुण हैं और जीव केः—"इच्छाद्वेष प्रत्यनसुखदुःख ज्ञानन्यात्मनोलिङ्गमिति" के आधार पर जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। साथ ही नित्य निराकार एवं निर्विकार और अज होने से परमात्मा कभी अवतार धारण नहीं करता। जिस प्रकार परमात्मा जगत् के कण-कण में सदैव विद्यमान, सर्वव्यापक है, उसी प्रकार जीवात्मा अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् शरीर में परिच्छिन्न अर्थात् एक देशी है। जीव सूक्ष्म, परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म, जीव बन्धन सहित, ईश्वर बन्धन रहित, जीव सुख दुःख का भोक्ता, ईश्वर आनन्द स्वरुप है। तथा ईश्वर और जीव में व्यापक व्याप्य सम्बन्ध है। जिस प्रकार स्थूल लोहे के गोलक में सूक्ष्म अग्नि व्यापक हो जाता है उसी प्रकार जीवात्मा में परमेश्वर व्यापक है।

इसके अतिरिक्त "प्रज्ञानं बह्म" "अहं ब्रह्मास्मि" 'तत्त्वमसि" अयमात्मा ब्रह्म" आदि नवीन वेदान्त द्वारा प्रचारित ध्वनित क्यों की तात्प्योपाधि" द्वारा महर्षि ने अपते अद्भुत पाण्डित्य

एवं अकाट्य तर्कों की विशदता से अत्यन्त सरल एवं हृदय ग्राहिणी मीमांसा प्रस्तुत की है।

वेद विषयक विचार प्रारम्भ करते हुये महर्षि दयानन्द ने ईश्वर और वेद का संबन्ध नित्य माना है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। यह ज्ञान प्रत्येक सर्गारम्भ में जीवों के कल्यणार्थ अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन चार ऋषियों के माध्यम से संसार में प्रकाशित एवं प्रसारित होता है। विषय भेद से वेद ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व इन चार संज्ञाओ से व्यवहृत है। वेद किसी देश-विशेष की भाषा में न होकर तत्कालीन मानव भाषा (वैदिक) में वर्तमान है। संस्कृत भाषा वैदिक भाषा से ही निःसृत तथा अनुप्राणित है। प्रभु ने वेद का ज्ञान भाषा-सहित प्रदान किया है। मनुष्य में स्वाभाविक ज्ञान मानवेतर पशुपक्षियों से न्यून ही है। यहाँ मानव के सम्पर्कहीन बालक की कोई भाषा भी नहीं हो सकती। अतएव मानव-जगत् की हितैषिणा से प्रभु अपना नैमेत्तिक ज्ञान प्रदान करता है। ज्ञान की इसी अविच्छिन्न परामपरा से मनुष्य समुदाय में ज्ञान विज्ञान गणित, भूगोल, खगोल, कृषि-व्यापार, धातु, अग्नि, विद्युत, वर्षा, विविध पशु-पक्षी रोग एवं औषधि_आदि विषयक ज्ञान का उत्तरोत्तर विकास एवं प्रसार होता है।

इस प्रकार आदि सृष्टि में ज्ञान दाता प्रभु को – "सःएवं पूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात्" इस पवित्र सूत्र के आधार पर संसार का आदिम गुरु माना गया है। क्योंकि परमात्मा सत्य है, अतएव "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ना तथा सुनना और सब आर्यों का परमधर्म है" ऋषि ने आर्य समाज के तृतीय नियम की रचना की है।

अष्टम समुल्लास में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, एवं प्रलय का वर्णन है। इस समुल्लास के प्रारम्भ में ही –

"इयंविसृष्टिर्यत् आबभूव", "तमआसीत्तमसागूढमग्रे" हिरण्यगर्भः समवर्ततांग्रे", पुरुष एवेदम् सर्वम्", यतोवा इमानि-भूतानि" इन पांच वेदमन्त्रों के आधार पर ईश्वर को जगत्कर्त्ता सिद्ध किया गया है। जगदीश्वर के सृष्टि-कर्तृत्व में जन्माद्यस्ययतः' यह दार्शनिक युक्ति दी गई है। साथ ही 'द्वा सुपर्णा सयुजासखाया' इस ऋग्वेद की ऋचा के माध्यम से प्रकृति रुपी वृक्ष पर जीवात्मा तथा परमात्मा रुपी दो पक्षियों के अनादिकाल से विराजमान होने का रुप-कालंकार में विवेचन है। इसके अतिरिक्त "अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णाम्" श्वेताश्वतरोपरिषद् के इस विख्यात् वचनानुसार प्रकृति को जगत् का उपादान कारण माना गया है। इस सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यही मान्यता प्रामाणिक तथा युक्तियुक्त संगत होती है कि इस दृश्यमान भौतिक जगत् का उपादान कारण प्रकृति, निमित्त कारण परमेश्वर, तथा साधारण कारण जीव, काल, दिशा, परमाणु-संयोग आदि हैं। इस जगत् की रचता जीवों के कल्याण के लिए है। तथा "स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया च" के अनुसार यह सम्पूर्ण रचना स्वाभाविक है। प्रभु-निर्मित सृष्टि में से पदार्थों को अनेकविधकार्यान्तिर बनाने वाला जीवात्मा साधारण निमित कारण भी माना गया है।

इसी सन्दर्भ में नवीन वेदान्त की उन समस्त दलीलों तथा प्रमाणों का अत्यन्त तर्कयुक्ततथा प्रतिभापूर्ण खण्डन किया गया है जिनके आधार पर नवीन वेदान्त ब्रह्म को ही सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादन कारण मानता है। जैसे कि: 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजा-ययेति" सोऽकामयत्बहुस्यां प्रजायेयेति"इन उपनिषद्-वाक्यों की छत्र-छाया में यह भ्रान्ति उत्पन्न करने का असफल प्रयास किया गया है, कि ब्रह्म ही अपनी इच्छानुसार बहुरुपेण जगत् बन गया इस मान्यता को प्रमाणित करने के लिए संसार में कोई हेतु उपस्थित नहीं कर सकता, क्योंकि आजतक सृष्टि में ऐसा दृष्टान्त नहीं मिलता कि कोइ वस्तु बिना उपादान कारण के बनी हो। कहीं भी ऐसा नहीं देखा गया कि स्वयं चेतन निमित्त कारण कुम्हार ही कुम्भ (घड़े) के रुप में परिवर्त्तित हो गया हो। इस विषय के स्पष्टीकरण के लिए महर्षि ने कारणगुणपूर्वकःकार्यगुणो दृष्टीः यह दार्शनिक दलील दी है। इस आधार पर यदि जगत् को ब्रह्म का कार्य माना जाये तो सत्, चित्, आनन्द, अज, अदृश्य, सर्वज्ञ, अखण्डादिगुण जो ब्रह्म में विद्यमान हैं वे कार्यरूप जगत में प्राप्त होने चाहिए। जब वे नहीं है तो निश्चित सिद्धान्त है कि कार्यरूप जगत् का उपादान कारण ब्रह्म कदापि नहीं हो सकता

महर्षि दयानन्द ने इस प्रकरण में सभी प्रकार की प्रचलित नास्तिक-धारणाओं का प्रबल खण्डन किया है जो सम्प्रदाय जगत् की उत्पत्ति मानकर इसको अनादिकाल से स्वरुप से स्थित मानता है, उसका भी खण्डन एक व्यवहारिक युक्ति से किया गया है। जैसे कि संसार का कठिन से कठिन पदार्थ हीरा, फौलाद, पाषाण, लौह सीसक आदि का खण्ड किया जा सकता है। जो विभाज्य है, वही पूर्ण में संयुक्त अवश्य है। क्योंकि जिसका विभाग हो सकता है उसका संयोग निश्चित है। जिसका संयोग है, वह स्वरुप से अनादि नहीं हो सकता और बिना कर्त्ता के उसकी स्थिति नहींहोसकतीहै, क्यों-कि संयोग और विभाग दोनों ही कर्तृजन्य हैं। यह सिद्धान्त सर्व-मान्य है। अतः इस विचित्र एवं विशाल सृष्टि का कर्त्ता परमात्मा है, वही अपने अपरिमित कला-कौशल से भूगोल, खगोल के समस्त पदार्थों का रचन पालन, धारण, नियमन संचालन एवं संहरण करता है। यथासमय परमात्मा प्रलयावस्था में संसार के जात समस्त पदार्थ

प्रकृति में इस प्रकार विलीन कर देता है, जिस प्रकार प्रेस में 'कम्पोजीटर' कम्पोज किए हुए फर्मे की आवश्यकता-निवृत्ति के पश्चात् 'डिस्ट्राय' करता हुआ मैटर के प्रत्येक अक्षर-मात्रा, विरामादि चिन्हों को रैक के अपने खानों में फैंक देता हैं । अतःसर्व शक्तिमान प्रणव पिता ही इस जगत् का कर्त्ता, धर्त्ता और संहर्त्ता है ।

नवम् समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्ध तथा मोक्ष विषय की स्थापना है । मानव-जीवन के लिए दार्शनिक क्षेत्र में प्रस्तुत विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है क्योंकि मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य ही मोक्ष प्राप्ति है । विषय-स्थापना के प्रारम्भ में महर्षि दयानन्द यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का मन्त्र उद्धृत करते हुए अमृतत्त्व-प्राप्ति के उपाय को प्रदर्शित करते हैं जैसे कि:—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

अर्थात् जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरुप को साथ ही जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तरकर विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार इस विषय में महर्षि का स्पष्ट अभिमत है कि अनित्याशुचिदुःखानात्मसु-नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या' योगदर्शन के इस सूत्र के आधार पर जीवात्मा सांसारिक विषयों में अविद्या के कारण ही आवद्ध होता है । तथा संसार के तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्तकर संसरिक विषयों से मोक्ष प्राप्त करता है

जिस प्रकार सृष्टि के उपरान्त प्रलय, प्रलय के उपरान्त सृष्टि जीवन के उपरान्त मृत्यु, मृत्यु के उपरान्त जीवन, दिन के पश्चात् रात्रि तथा रात्रि के पश्चात् दिन का क्रम अनादि काल से है, उसी प्रकार बन्धन के बाद मुक्ति और मुक्ति के बाद बन्धन भी अनादि काल से है और अनन्तकाल तक रहेगा । उस आधार पर मोक्ष भी अनित्य माना गया है । जो लोग ऐसा मानते हैं कि मोक्षावस्था में जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है तथा सदा- सर्वदा के लिन मुक्त हो जाता है वे भ्रान्त धारणा के शिकार हो चुके हैं । वस्तुतः जीव और ब्रह्म की सत्ता पृथक्-पृथक् है और रहेगी । मुक्ति की अनित्यता को प्रमाणित करने के लिए ऋषिवर की सर्व प्रथम युक्ति यही है कि जीवात्मा परिच्छिन्न, एकदेशी, अल्पज्ञ एवं अल्पसामर्थ्यवान् है, अतः अल्पज्ञ के द्वारा कृतकर्म अल्प ही होंगे और अल्प (सीमित) कर्मों का फल असीमित न होकर सीमित अर्थात् अनित्य ही होगा । इस प्रसंग में महर्षि ने दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानांनामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः इस न्यायदर्शन के सूत्र के आधार पर मोक्षप्राप्ति के प्रकार तथा **ते ब्रह्मलोके ह परान्त काले परामृतात् परिमुच्यति सर्वे**" इस उपनिषद् के प्रमाण के धरातल पर सावधि मोक्ष का ही वर्णन किया है । जीवात्मा की मुक्ति के आनन्द भोग की अवधि ३१नील १०खरब ४० अरब वर्ष मानी गई है । इस अवधि में सृष्टि उत्पत्ति एवं प्रलय ३६००० बार हो जाती है

सावधि मोक्ष की मान्यता आध्यात्मिक क्षेत्र में अति प्राचीन होतु हुए भी वर्तमान काल में विचित्र एवं नवीन सी ही प्रतीत होती है ।

इसके अतिरिक्त ब्रह्म माया के प्रभाव-वश बन्ध में आबाद्ध है तथा माया का आवरण हटते ही ब्रह्म —स्वरुप में स्थित हो जाता है । इस मायावाद का भी ऋषिवर ने सहेतुक खण्डन किया है । शास्त्रीय प्रमाणों की परम्परानुसार जीवात्मा को मोक्ष प्राप्ति एक जन्म में न होकर '**अनेकजन्मसंसिद्धिस्तो यातिपरां गतिम्** के अनुसार जन्म जन्मान्तर के पुनीत प्रयासों का परिणाम है । इस प्रसंग का समाप्ति में महर्षि ने 'योगश्चित्तवृत्तिन्निरोधः "तदाद्रष्टुः स्वरुपेऽवस्थानम् तथा अथत्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः" इन दार्शनिक सूत्रों को व्याख्यात करते हुए योग की दार्शनिक प्रक्रिया तथा आध्यात्कि आधिभौतिक एवं आधिदैविक त्रिविध दुःखों का निवृति को प्रस्तुत किया है । इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने संसार के दार्शनिकों के समक्ष वेदानुमोदित वैदिक दर्शन की मान्यता का सहेतुक एर्व सप्रमाण प्रतिष्ठापित करते हुये अपनी अलौकिक दार्शनिक पाण्डित्य प्रतिभा का पावन परिचय दिया है ।

●

सत्यार्थ प्रकाश की महिमा

प्रथम समुल्लास में देखो ईश्वर का गुण गान भरा है।
सन्तानों की शिक्षा का द्वितीय में सुन्दर सकल विधान भरा है ॥
समुल्लास तीसरे में विधिवत् पठन पाठन की अंकित विधि है ।
चौथा समुल्लास तो समझो गृहस्थाश्रम की अतुल निधि है ॥

सत्य अर्थ का यह प्रकाश इसमें उल्लास अपार भरा है।
इसमें ऋषि दयानन्द का अद्भुत हृदयोद्गार भरा है ॥

समुल्लास पाँचवें में विस्तृत वानप्रस्थ संन्यास की महिमा।
समुल्लास छठवाँ बतलाता वैदिक राजनीति की गरिमा ॥
सप्तम समुल्लास में ईश्वर वेद विषय की न्यारी व्याख्या ।
सृष्टि-उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय की अष्टम में है प्यारी व्याख्या ॥

सत्य अर्थ का यह प्रकाश इसमें प्रिय आर्ष विचार भरा है।
इसमें ऋषिवर दयानन्द का — — — —

नवमें समुल्लास में विद्या और अविद्या का स्वरुप है ।
मोक्ष-बन्ध की अद्भुत चर्चा, विस्तृत व्याख्या, सही रुप है ॥
दशवे में है सदाचार और अनाचार का विस्तृत वर्णन ।
भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों का भी इसमें ही है सहां निरुपण ॥

सत्य अर्थ का यह प्रकाश इसमें सुन्दर श्रुतिसार भरा है।
इसमें ऋषिवर दयानन्द का — — — —

भारतीय सब मिथ्यामत खण्डन मण्डन ग्यारहवें में ।
चार्वाक अरु जैन बौद्ध मत नास्तिक मत की बारहवें में ॥
सत्य समीक्षा करके ऋषिवर ने भारी उपकार किया है।
जिसमें जो प्रतिकूल वेद के उस उस का प्रतिकार किया है ॥

सत्य अर्थ का यह प्रकाश इसमें आर्यों प्यार भरा है ।
इसमें ऋषिवर दयानन्द का — — — —

तेरहवें में किया समीक्षण युक्ति पूर्ण, क्रिश्चियन मतों का ।
बेबुनियादी किला गिराया चौदहवें में यवन मतों का ॥
तर्कतीर बरसाये ऋषि ने भाग चली मज़हबी सवारी ।
मची खलबली ईसाई और यवनों के दल में भारी ॥

मानव जीवन सुरभित करने का सुंदर सुमन-सुहार भरा है।
इसमें ऋषिवर दयानन्द का — — — —

किसी मनुज का मतवादी का हृदय दुखाना काम नहीं है।
बात सत्य, निष्पक्ष है इसमें पक्षपात का नाम नहीं है॥
मानवता का पाठ पढ़ाने वाला प्यारा यही ग्रन्थ है।
पथ भ्रष्टों को सुपथ पै लाने वाला प्यारा यही ग्रन्थ है॥

इसमें स्वदेश का स्वाभिमान, मानवता का भण्डार भराहै।
इसमें ऋषिवर दयानन्द का — — — —

यह महा ग्रन्थ है,अमर ग्रन्थ है क्रान्ति शान्ति के मंत्र इसी में।
मानव जीवन विकसित करने वाले अद्भुत यंत्र इसी में॥
इस प्रकाश के पुंज ग्रन्थ में विपुल प्रकाश आनन्द भरा है।,
इसके हर अक्षर में समझो दया और आनन्द भरा है॥

सत्य अर्थ का यह प्रकाश इसमें "भास्कर" उजियार भरा है।
इसमें ऋषिवर दयानन्द का अद्भुत हृदयोद्गार भरा है॥

-कविवर विद्याभास्कर शास्त्री

कवित्त

पेज ५६ का शेष

(७)

हजारों वरष गये, पोल में मचाई रोल,
खोल-खोल पोल ऋषी, आये थे जगाने को !
"सत्यार्थ प्रकाश" पढ़ा, खुल आई पोल सब,
प्रकाश हुआ है सत्य, आदर्श दिखाने को !!
मानव को मान मिला, सादर सम्मान मिला,
नारियों की आन-शान, प्रतिष्ठा रखाने को !
'सत्यार्थ प्रकाश" रचा, अमर-अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

(८)

प्रथम, सुमुल्लास में ओंकार की व्याख्या लिखी,
द्वितीय, सन्तान की सुशिक्षा दिखाने को !
तृतीय, ब्रह्मचर्य औ-पठान-पाठन शिक्षा'
सत्यासत्याध्ययन, की रीति सु जताने को !!
चतुर्थ, विवाह गृहाश्रम की गति-विधि,
पञ्चम, में वानप्रस्थ, संन्यास बताने को !
"सत्यार्थ प्रकाश" रचा, अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

(९)

छठा समुल्लास में है, राज्य नीति-रीति धर्म,
सप्तम, में वेद-सत्य, ईश्वर बताने को,।
अष्टम, में जगत् की, उत्पत्ति, स्थिति-प्रलय,
विविध प्रकार ठीक, ध्यान सत्य लाने को !!
नव में, विविधविद्या, बन्ध-मोक्ष व्यवस्था है,
स्वामी दयानन्द, ईश्वर सत्ता में रहाने को !
"सत्यार्थप्रकाश" रचा अमर-अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा,गौरव रखाने को !!!

(१०)

अचार औ अनाचार, भक्षाभक्ष्य भोज आदि,
सर्व-विधि युत सर्व दशवा में गाने को !
एकादश, आर्यवर्त-मत और मतान्तर,
खण्डन-मण्डन विषय, खोल के बताने को !!
द्वादश में, चार-वाक, बोद्ध और जैन मत,
त्रयोदश, ईसाई का मत ये बताने को !
"सत्यार्थप्रकाश" रचा, अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को ॥

(११)

चौदह समुल्लास में है, यवनों का मत ज्ञान,
स्वमन्तव्यामन्तव्य, औ विविध बताने को !
एक नहीं छोड़ा मत, पन्था-पन्थी योग कर्म,
वेद के विरुद्ध जान- ज्ञान सुवताने को !!
पढ़ा "धनसारु" कवि विविध प्रकार यह,
सत्यार्थप्रकाश सत्य-प्रकाश में आने को ॥
सत्यार्थप्रकाश रचा, अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

(१२)

ईश, जीव, प्रकृति का स्वरुप बताया स्वामी,
सत्यासत्य - भेद-भाव, युक्ति दे बताने को !
स्वर्ग नरक, पुण्य पाप, सुरासुर गण,
मानव-दानव रुप, लक्ष ये लखाने को ॥
धर्माधर्म कर्माकर्म, नीति औ अनीति रीति,
राज्यधर्म शासन की गति सो जताने को !!
"सत्यार्थप्रकाश" रचा अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा गौरव रखाने !!

(१३)

उत्पत्ति, स्थिति प्रलय, जड़ और चेतनता,
कार्य-कारण समूचे, सत्य सो लखाने को !
अनेक ग्रन्थों का सार, एक ही ग्रन्थ में लिखा
सही सत्य तत्व के, स्वरूप बताने को !]
धन्य-धन्य ऋषिवर, आये थे प्रकाश ले के,
मूल से मिटाया तम,जगत् जगाने को !
'सत्यार्थप्रकाश' रचा' अमर अनूप ग्रन्थ'
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

(१४)

लाखों ग्रन्थ रचे और, रचाते जाते हैं कवि,
हुआ न प्रकाश ऐसा,अज्ञान मिटाने को ॥
"सत्यार्थप्रकाश" एक बिश्व में प्रकाश किया
अन्तरिक्ष गये तम, पास नही आने को !
अकथ अपार रहा—उपमा न लागे कहीं,
किया उपकार ऋषी, की न भुलाने को ॥
"सत्यार्थ प्रकाश" रचा' अमर अनूप ग्रन्थ,
देश में हमारा बड़ा, गौरव रखाने को !!

कवि कस्तूरचन्द "धनसार"
आर्य कुटीर पीपाड़ शहर (राज०)

Educational Planning andthe Satyartha Prakash

—Dr. Satyakam

Preamble

In the form of the 'Satyartha Prakash' Maharishi Dayananda gave the then enslaved Indian nation a plan of uprising, rebuilding and forward-marching. He was fully aware of the urgent needs of the *contemporary* Hindu society as well as of the Indian nation as a whole. Starting from the need for communal harmony and leading towards a completely 'Indian' identity in political, social and cultural fields, he laid down a well-knit plan for the nation's all-round resurgence. It was through this great and immortal work that he declared full-throatedly about the immediate need for :

(a) Reforming the home-life ;

(b) Restructuring the educational plans ;

(c) Planning the family structure ;

(d) Utilising the energy of retired and old-age people ;

(e) Complete Swadeshi plan for the uplift of the country ;

(f) Immediate and complete independence ;

(g) Re-orienting the nation towards contemporary needs ; and

(h) Immediate switchover to the National Language i.e., Aryabhasha Hindi.

All these declarations have been made and plans therefor laid down in the first TEN chapters of the SATYARTHA PRAKASH, the FIRST, among which stresses upon the most urgent contemporary need for communal harmony, which attracted his attention as the result of his perusal of the process of foreign domination of India, more particularly after the failure of the first war of Freedom.

In these lines, we shall confine ourselves to his ideas and declarations regarding the restructuring of the educational pattern, and the action taken by himself, more than a century ago, to carry out the abovementioned plan as a whole. Though Dayanand could not succeed himself to his entire satisfaction, Arya Samaj has tried to lived upto his expectations, at least in the field of Education, though much remains there still to be done in that direction.

Importance

It was not merely co-incidental that Dayanand gave the first and foremost place to the chapter on Education, immediately after the opening chapter stressing on communal harmony and the ultimate unity of all the religions. For him, the need for the rebuilding the character of Indian nation was of supreme importance, if ever the nation aspired to get its freedom back and hoped to prosper again with its old multitudinal greatness. For this, according to him, the nation was required to know, first of all, its own basic creed. Only then it could have become capable of accepting the challenge of the so called modern age as well as in checking the then rising tendency of copying the west in almost all walks of life. This could have been done only be catching our future citizens while they were young and could be moulded into true Indians. That is why Dayanand gave education the most prominent place, from the very beginning, in his scheme of nation building. The part of parental responsibility and upbringing of the children have been taken up in the Second Chapter of Satyartha Prakasha while the main educational plan has been taken up in the Third one.

The Beginning

His plan catches the child, while still it is in the cradle. For the first five formative years he entrusts the education of the child to its mother, she alone being the most capable person to inculcate and nurture the seeds of culture and tradition in that developing child. And for that matter, Dayanand wants the mothers themselves to be educated in the first place. In his plan, the mother, as the centre of the family, becomes the sole carrier of the tradition and culure, because she alone comes into most immediate contact with the child particularly in those early formative years. The father has also to play his own part in this scheme of Education, though he

steps in a bit later. Thus, in the second chapter the primary stress has been laid on the immediate environs of the up-coming child, as according to the Indian tradition it is this age *wherein* one can mould the future pattern of not only of the development of a child but also of the nation as a whole, the former becoming the mainstay of the latter later on.

The Stage of Preparation

Dayanand prefers the age of *five* as proper one to acquaint the child with the preliminary ingredients of education under the aegis of their homes as well as in the neighbourhood preliminary schools. During this period, the child should be prepared to become ready to receive the methodical education to be started three years thence. Thus, the age between 5 and 8 has been set apart as the preparatory one. More stress should be laid at this stage on oral acquaintence of a child with the various aspects of culture and other social things, without burdening him too much with the 'written exactitude'. Thus, the child should become a repository of the best of our culture and other knowledge without getting exactitude with regard to the Meaning, Grammer, Writing, etc., concerned though the elementary knowledge of the latter should also be possessed at the same time. Sending to the neighbourhood schools, separately located for boys and girls, will prepare the child to be ready to live apart from his parents and become dedicated solely to be educated *methodically* in the coming years. Thus the age-group between 5 and 8 years is treated as 'preparatory' one, during which the child should become acquainted with the vast variety subjects and facts, through the medium of stories and verses, without going deep in any particular branch and acquiring at the same time the preliminary knowledge regarding reading and writing. At least he must become by the end of his 8th year of age the repository of his own tradition and culture.

The Launching

The proper age for launching a child into a systematic educational carrier, has been set as the 8th year. The launching ceremony is known as **'Yajnopavita-Samskara'** i.e., 'sacred thread **ceremony'.** Before sending the child to a regular school; this is to be performed for the children of both the sexes. This is performed to imbibe in them the sense of responsibility towards the new stage, i.e., Brahmcharya or studenthood.

Dayanand writes :

> "Boys and girls, when they attain the age of 8 years, should be sent to their respective schools. In no instance should they be placed under the tution of the teachers of low character, etc."
>
> (Ch. 3, p.31)

Elsewhere he says that in some cases, e.g. in the case of girls, etc. this regular type of education might be started earlier; but in no case it should be before the age of five.

The Orbit

Thus launched into the educational orbit, a student should cross several stages before he can be *proclaimed* as a real scholar. For becoming a real scholar, it is essential to possess as wider knowledge as possible. But the width of one's knowledge must be accompanied by its depth also. A student must try to go through as many branches of knowledge as he can and try to attain their deeper knowledge; because without doing so his knowledge would always remain partial and therefore, incomplete. There is nothing more dangerous and fatal than to possess an incomplete and partial knowledge. This has been all along the traditional Indian view about the knowledge. The word 'Veda' means the 'knowledge'. For mastering this Veda, Yaska says :

"पारोपर्यवित्सु वेदितृणु खलु भूयोविद्यः प्रशस्यते ।"

"The success and praise is gained only by those who encompass more and wider knowledge"

It is from this point of view that Dayanand proposes a scheme of study, which aims at making a scholar well-versed in a wider range of subjects along with his subject of specialisation.

On the whole, this education orbit comprises of 19 to 21 years. The shortening of the period depends on the cuteness of the receptive mind of the students. Dayanand has prescribed the broadest plan-structure, setting several halt stages in between. At every halt-stage, one has to switch on an apparently new subject, otherwise connected serially with the preceding one, though of a bit higher level than the preceding one. And it is an astonishing fact that in this scheme.

of study, as prescribed by Dayanand, Vedas make only the penultimate stage, not the final one. This fact in itself shows that it was not solely with a misconceived religious fervour that Dayanand wanted to reorient and replan the whole of the educational structure. The ultimate stage, in his scheme, was to be composed of the specialised branches of knowledge, known as Upa-Vedas, the essentials of all of which must be possessed by all, though specialising only in one of them. He declares the aim of education as follows :

> "Both the teachers and the students should be so endeavour as to be able to master all the sciences and arts and become highly cultured in twenty or twenty one years and, thus, accomplish the object of their lives and live in happiness".

In his scheme of studies the Mathematical and Physical sciences are to be studied compulsorily by all, alongside the different fine-arts an other branches of sciences etc.

The Plan

His pronosed plan could be redefined in the form of the following structural pattern :

(a) The first step : comprises of the scientific study of Phonetics. so as to enable a student to clearly pronounce and understand a language. This can be done either at home or at school, along side the language learning.

(b) The second : and main step comprises of the study of Grammer leading to the complete and early mastery over the language and, through that, over the sciences, etc. This step should not be allotted more than three years.

(c) Third step : the fourth year of study should be consumed in gaining the mastery over the sciences of Etymology and Semantics, along with that of the prosodic structures, making a student capable of his own creative compositions by the age of 12. By this time he must become intensely conversant with the linguistic structures of Ancient and contemporaries languages.

(d) Fourth Step : After gaining the mastery over the language, one must become conversant with the great epics, Smrtis, and other writings of the celebrated ones. This intensive literary study should not take more than one year.

(e) Fifth Step : The next two years, i.e., upto the age of 15, should be devoted to the thorough study of the Six Systems of Indian Philosophy, which include the study of Physics, Metaphysics and Cosmology etc. The major ten Upanishads should also find place with in this step.

(f) Sixth Step : At the age of sixteen or even earlier if he has completed the earlier training, a student should be initiated in the study of the Four Vedas, along with that of their respective Brahmanas. This step is most essential because Vedas are supposed to be the repositories of all the main branches of knowedge and by knowing them alone thoroughly, one can know all the essential different branches of knowledge. this study must not consume more than six years.

(g) Seventh Step : Thus, after crossing the age of adolescence and while stepping in stage of youthhood, one becomes maturer enough to gain the specialised knowledge of different sciences and other types of knowledge, all of them are represented in the form of the 'Upa-Vedas'. One should not be misled by the mere names of these four 'Upa-Vedas' Dayanand elaborates particularly that these four Upa-Vedas are representative of almost every kind of specialised knowledge, be it then in the fields of science, arts, or fine-arts, etc. According to him, the stdy of Methematical. Astronomical and other associated sciences should be taken up in the end. One can be choosy, as far as this step is concerned. This is the stage of specialisation, though one must try to learn about most of them. Therefore, it depends from student to student, how much time he may consume in completing his studies and passing out. According to Dayanand, whole of this course of study can be *covered* easily in not more than eight years, even if one aims at specialising in all the aforementioned branches of knowledge though one particular branch might ensure in between two or three years only.

Other Essentials : Away from Cities

Dayanand know very well that this type of *intensive* study can in no way be gone through without other imperatives being followed properly. Foremost amongst such imperatives was total dedication with a wholly detached life from worldly worries and undue impressions and influences of the outside world. This was not possible if a desirous studen was allowed to remain within his own family and its continuous influence. Therefore, as a very essential

step of his scheme of education, he prescribes that such educational institutions should be located outside the environs of a city and its life. He furthers uggests that these institutions must be located at least five miles away from a city. Only in this way a student may remain uninfluenced by the atmosphere of all around.

Dayanand was well convinced by the suggetion of a vedic verse, wherein the best location is suggested to be in the footsteps of the hills and at the confluence of the rivers which means that the best location for a meditative study could only be in the lap of the nature and away from the cities. The craddle of the nature alone could assist in promoting any nourishing the best of the human wisdom. And, rightly, he thought that in the present day context no better solution could be offered other than locating the Institutes of Learning according to the aforesaid Vedic suggetion : i.e., away from the maddening life of the cities, so that an unbiased and independent mind might be developed.

Ashrama System :

Some schools might be opened in the vicinity of the localities, only for those who do not want to engage themselves in the deeper studies. The education for them will only be an instrument for acquainting them with the basic human needs as well as making them ready for entering the economic strife and lead an ordinary human life. But for the students, who aspire to gain mastery in different fields, including the machanical and industrial fields, the education demands a total dedication and absorption. For this, the student should lead a life of total dedication, without having to worry about the needs of the family and other wordly affairs. Apart from this, his instructors and teachers should also be ready at hand to be consulted at any moment. He must also be able to lead a regularised life, so that the might reap the virtuous fruits of the disciplined life and become a true 'disciple', thereby. Only in such a disciplined atmosphare the body, mind and soul can be taken care of and uplifted properly. The totality of man becomes meaningless, if only the one aspect of it is improved, by neglecting the others.

It was from this point of view that the ancient Indian educational system was based on the 'Ashramas' or the 'residential institutions' (hostels) serving as the seats of training life on the basis of the *Yamas* and the *Niyamas* representing the step for the Spiritual and Mental uplift respectively. These 'Ashramas' were meant for educating and providing all the aforesaid facilities to the students, along with the sense of proximity to their teachers. These residential institutions were also known in ancident times as 'Gurukulas' meaning literally 'the families of the Teachers'. Hence, his stress on the Gurukuls System of education.

Brahmacharya

But for him all this was meaningless, if it was without the accompaniment of Brahmacharya : a pious and dedicated life, devoid of sexual or stimulating experiences by thought, speach and deeds the proper time for which may come only after this training in abstinence. Dayanand, after knowing and experiencing the marvellous results of such a abstinent and pious life, could not think of any other way for the bright future of his people and the country. Hence, his stress on Brahmacharya as the mainstay of the student life.

Conclusions

Thus Dayanand did not stop at thinking about the plan and curricullum alone for the national education, but he also laid stress on other associated factors, which should govern it inseparably. We can recount all the chief points enunciated by aim in this regard in his Satyarth Prakash as follows :

(1) First five years of a child should be left for behaviourial training in the hands of its parents, especially of mother, who themselves should be properly trained and prepared for such a responsibility.

(2) The next three years, i.e. upto the age of eight years, should be devoid of the preparatory education which should be conducted in the neighbourhood schools as well as under the direct guidence of its father, who should guide and acquaint his child in his traditional trade or craft also, if there is any.

(3) The age of eight years is thought to be proper one for the regular enunciating of a child into a regular student life as a Brahmachari—solely dedicated towards his physical, mental and spiritual training and *uplift*. An exception as regards to the age might be made in the case of the children of the Education and

Educators who might attain the proper aptitude even at the age of five. This inunciation is known as 'Sacred-thread Ceremony' or 'Yajnopavita Samskara'.

(4) A Regular course of study extending from sixteen to twenty years should then be persued in the residential Gurukulas. This course should begin with the mastery over the speech and language, passing through the mastery over the Vedas, and attaining ultimately the excellance in as many branches of science and arts as possible. Nothing knowledgeable should be left out unscanned by a student.

But for attaining all this the Gurkul as should be established away from the tempting and burdensome and polluted city-life.

Swami Dayanand tried himself to experiment with this scheme, though it was detsined for his followers of the posteriority to emulate and elaborate his ideas and ideals in that direction. And they were quick to rise to the occasion and fight back the growing materialistic influence slavish mentality, generated by the British conquest as well as the British educational system.

What motivated Maharishi Dayanand to write the Satyarth Prakash

— Virendra Paramartha

While we celebrate the Centenary of Satyarth Prakash, it will be quite appropriate to have a critical study of the conditions existing in the 19th Century in India, which pained Swami Dayanand and prompted him to inspire, educate and enthuse the people by means of expressing his ideas through the treatise to eradicate ignorance and to form a united society which should be morally, physically and ideologically strong to be able to atain the ancient status for their country.

The passages in Satyarth Prakash and the conditions prevalent at the time of Dayanand clearly indicate the motive behind writing this voluminous book. It is not exclusively a religious book as is considered by a number of persons in Arya Samaj, but it is a book which guides us what steps should be taken to form a cohesive society to attain the lost glory as well as Independence. Its objective is explicitly nerrated in what he called his life's mission as evident from the following :

"The purpose of my life is the extirpation of evils, introduction of truth in thought, speech and deeds, the preservation of unity of religion, the eradication of mutual enmity, the extension of friendly intercourse and the advancement of public happiness by reciprocal subservience of the human family. May the grace of the Almighty God and the consent and cooperation of the learned soon spread these doctrines all over the world, to facilitate everybody's endeavour in the advancement of virtue, wealth, godly pleasure and salvation, so that peace, prosperity and happiness may ever reign in the world".

The inference from the above stated passage is clear in that he wanted to unite the people of India so that they should work unitedly for the advancement of public happiness by reciprocal subservience of the human family and during his life-time he strived for it. In my opinion, he was greatly perturbed by the foreign rule and the hardships and atrocities unleashed on the people by the Britishers at that time. He had a strong desire to remove the shackles of foreign rule and saw no other way except to unite the faction-stricken society and wage a war against the foreign ruler. The following passage from Satyarth Prakash reveals his feelings. He writes :

"Whatever conditions may exist in a self-governed country, it will always be better than foreign rule, even if the latter may provide justice, benevolent treatment, no discrinination because of race or religion and good administration. In any case, people could never have real peace and happiness under a foreign ruler".

The following passage from the aforesaid book will further strengthen the fact that he was deadly against the foreign domination of India and was also trying his best to establish a machinery to unite the rank and file and put up a strong fight against the Britishers. He states in a state of despair :

"These sovereigns were the Aryans from the beginning of the world until the great war (Mahabharata). But when brothers fight with each others, foreign third party sets itself up as an arbitrator. Now the misfortune of their descendents is that they have been deprived of all power and government. What a pity is that those who once ruled over the foreign countries, are being trampled down by foreigners. On account of indolence, negligence and internecine fights, the Aryans have lost their own undivided, independent and peaceful rule of Aryavarta...........What ever has been done is done, we should now strive for to get over this state. The pity is that the same disease still afflicts us, There is much misery and animosity on account of the conflicting faiths. It is a serious matter worth careful consideration. It is the imparative duty of wise persons to work hard to remove misery by creating an atmosphere where there would be no inimical feelings among the people and thus establish peace and happiness for all".

According to Shri Jaya Chandra Vidyalankar, the Swami helped the freedom fighters involved in the 1857 war of Independence. He sent Shyamji Krishna Verma, his trusted disciple to England, who carried out a revolution and became a guide to a large number of Indian Revolutionaries living in India and abroad and made Paris his headquarters.

If we accept the view that his life's mission was to break the chains of bondage and make the country free the question arises why then he adopted a circuitous course and did not indulge in the direct approach to the problem. It was Dayanand's shrewdness and foresight which guided his path. He had studied the conditions of the society which was faction-ridden and politically unsound. It required several decades for its uplift and unification. He, therefore, decided to arouse nationalism among the people by education and forging unity among them. To achieve this end, he decided to write a comprehensive treatise in the language of the masses i.e., Hindi, and named it "Satyarth Praksh" which had no relation or connection with any sect or religion dominating the society at that time. His approach was systematic, as we can see from this most important book. Beginning from the education which enthused a boy to realise his ancient past and be prepared to shoulder the responsibility of Grihastha, or for that matter of the Society, he advocated that people should leave their household and work for the betterment of the society as a whole. However, he took great pains in describing in detail Raj Dharma or politics and government of the country and by inference advocating that if people were united and worked for the independence of the country they should succeed. In fact, he did not want direct confrontation with the Britishers, although he had a burning desire to organise the society for the desired action. It will not be out of context to mention here that this subtle teaching and advices caused concern in the British circles, and the rulers in their confidential correspondence declared the Swami as a rebel. He was shadowed and constant watch was kept over his movement and activities. This should satisfy the curiosity of those, who wonder why the Swami did not launch a war against the foreign rule.

The Swami never wanted to add one more sect to the already sect-infested society. Although he fearlessly criticized various sects and religions for their misconception, superstitions and evil practices, he came to terms with the fact that the existing social life was complex and would not be fitted into a rigid or orthodox type of doctrinal framework or into a free Western type of system devoid of all traditional customs and rites. He, therefore, decided to follow a midway course in which old habits of thought and behaviour could be adjusted with the enlightened doctrine based on the teachings of the Vedas, and formulated a common forum with broad based objectives, which were humanitarian and universally beneficial. It was Arya Samaj. A perusal of its objectives clearly demonstrates the Swami's intention underlying in establishing this forum.

If we look through the pages of history, we will note that this great land was frequented by the appearance of the Great Souls from time to time. Those personalities had only one objective of eradicating evils from the Society and establishing righteousness among the people. However, each of them had a different mode of action. Lord Buddha in order to eradicate the evil of animal sacrifice in the sacred yajna performed under the dictates of the priests, not only denounced this cruel act or 'Karmakanda', but also advocated non-existence of God. Later came Shankaracharya who was extremely distressed to find the socicty in the grips of the Tantrics and various sects of Vama Margis who preached agnosticism and having established their supremacy, were destroying the human values. He revived the Vedas and with his forceful arguments brought the entire society under the banner of Theism, thus creating conditions unlivable for the Buddhists in the land of Aryavarta.

Shankaracharya's objective was to reform the Society and as he could not contact the widely spread vast majority personally, it is said, he made a proclamation that anyone who heard the sound of conch would cease to be a Buddhist and revert back to Sanatan Dharma. The conches were blown by his disciples and the Buddhism was ousted from India. Dayanand in his wanderings, before he had approached Guru Virjanand for his education, had seen the sad plight of the people reeling under the oppressive atmosphere of Zamindars and Mahants of various sects and falling easy prey to the aggressive British, who were gradually but systematically usurping power from faction-stricken rulers of that time. He, there-

fore, after carefully considering the conditions of the society and the treachery of thie Brtish empire, wrote his famous treatise and established Arya Samaj.

Swami Dayanand was a man of action. He not only framed the rules of Arya Samaj, but also wrote several treatises, to benefit the society. He organised 'Paropakarini Sabha' in which he included persons of integrity and influence, irrespective of their religious bias. Maharana Sajan Singh of Udaipur was made Chairman of the body although he could not get out totally of his belief that Eklingnath (Shiva) the deity was the Ruler of the State of Mewar and he (Sajan singh) was the Minister (Dewan) only. The ten rules (commandments) of Arya Samaj nowhere mentioned the rigid practice of rituals by its members. It is significant that he had a meeting with Sir Syed Ahmed Khan and Keshava Chandra Sen to discuss the existing political and social conditions in the country. In fact, he wanted to collect all well meaning nationalists and religious minded people on a common platform and devise ways and means to carry out the plans necessarry for the attainment of freedom.

No doubt, Satyarth Prakash is a book of knowledge and demonstrates that Swami Dayanand was a Master Theologian, who enlightened the people of the world regarding the reality of religion and the difference between a religion and a sect, advocating that the people should not follow blindly any sect and keep away from superstitions. However, there is no denying of the fact that the motive of his writing of this great treatise-Satyarth Prakash-was to free the country from foreign rule and place her on the pedestal of ancient glory. ● ●

Art of Government According to the Satyarath Prakash

—G.B.K. Hooja

Dayanand was not only a religious teacher. He was also a political Guru. He took great pains in educating the princes of Rajasthan in the art of Government in accordance with the Vedic scriptures and the laws of Manu. Above all he preached that the king were not above law. They were also subject to the dictates of Dharma.

The Vedas envisaged a democratic Society. Now and again absolute rulers did appear on the political scene but Dayanand following the laws of Manu states in the Satyarth Prakesh that no person should be entrusted with absolute power. "The king should presideo ver the Assembly. Both the king and Assembly should be subject to the will of the people, while the people in their turn should obey the laws and orders of the Assembly".

Quoting a verse from the Manu Smriti, Swami Dayanand writes in the Satyarth Prakash that the king and the members of Assembly should be inspired with the desire to produce new wealth, protect what has been acquired, increase the wealth of the country, and utilise the increased weath for the spread of knowledge and the propagation of virtuous conduct and to help the physically handicapped, the students seeking knowledge and the learned folk.

According to Manu, the law of retributive justice or just punishment is the true governor of the people for the absence of justice spoils people. The king who administers justice promotes the welfare of the people. Therefore, persons who are virtuous, unselfish and well-versed in the scriptures should be appointed as Judges and in positions of authority. The king, his Ministers and public servents should shun evil conduct and set good examples to the people.

Punishment should be imposed on law-breakers in accordance with their status in society. Princes found guilty of a crime should be fined a thousand times more than an ordinary citizen. Certain crimes were to be punished with extreme severity so that this could serve as a deterrent. Bribery for instance was punishable with confiscation of property or even banishment from the country.

The kings were expected to inspect their offices, Armies and Treasuries regularly so that they remained in contant touch with what their subordinates were doing and no harrasment was caused to the people.

Rishi Dayanand exhorted his princely disciples to read the VIIth, VIIIth and IXth Chapters of the Code of Manu, the morals of Shukra, Vidur Prajagar, and the Shanti Parva of the Maha Bharat relating to the duties of Kings and and to mould their conduct accordingly. In the VIth Chapter of the Satyarth Prakash, the Rishi postulates his concept of a good Government. He ends the Chapter with the Vedic injuction "we are all the subjects of God; may His Grace direct our conduct of public affairs".

A study of this chapter would yield valuable guidelines to our Ministers and Administrators in the philosophy and art of Government. ●

South Eastern Carriers (Pvt.) Ltd.

34—C BHAGWAN MARG, NEN DELHI-110055

TELEPHONES

Administrative Office

Regd. Office	517701
Booking And	517702
Deilvery Office	
Accounts Depurtment	517703

Movement Control

Booking Offioe: 3/5 Jindal Trust Building, Asaf Ali Road-224830

Delhi U.P. BOrder Bheesham Marg-200446

SAWHNEY'S
TYRES
give you more-
more and
more miles
That is why,
today more and more
people are buying Sawhney Tyres.
The heavy-duty cycle and rickshaw
Tyres, that are miles ahead in
performance, durability and strength.
You really save—
when you buy Sawhney
Tyres and Tubes
for cycle and rickshaw.
SAWHNEY RUBBER
INDUSTRIES
DELHI-110032
Sales Office:
Esplanade Road, DELHI-110006
Phone: 273431
HEAVY DUTY TYRE
SAWHNEY'S
graphisads/ST/521

The finest in
Indian Handicrafts
brought to you by
HIRA LALL & SON
Established in 1945
Government of India Recognised
EXPORT HOUSE
Manufacturers and Exporters of Handicrafts,
specialised in Brass Artwares, Wooden Carvings,
Precious and Semi-precious Stones, and
E.P.N.S. Wares.
Address:
20 EAST PARK AREA, KAROL BAGH, NEW DELHI-110 005.
TEL 522588, 522867 TELEX 2720 CABLE HANDWORKS
BRANCH 81-A, PRINCE ROAD, MORADABAD, UP (INDIA).
TEL 3444, 3333.
FOREIGN OFFICE : WIETZENDIEK 1 3000 HANNOVER 51
(W. GERMANY) TEL (0511) 65760 CABLE HIRALAL
NATIONAL
AWARD
WINNERS
MAPP HLS 1026